'विदेह'

हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा

○ मूल्य १) रु

वेद-संस्थान, अजमेर

संस्थानप्रकाशन-संख्या : ६४

हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

वे द - सं स्था न,
अजमेर

प्रकाशकीय

श्री स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' ने 'सविता' पत्रिका में जुलाई, १९६८ से मई, १९७० तक एक लेखमाला 'अस्तित्व की रक्षा' शीर्षक से लिखी थी। वह इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत है।

इस लेखमाला में लेखक ने 'हिन्दु' शब्द के बारे में प्रचलित, भ्रांत धारणाओं का खंडन करके, इस शब्द को, धर्म वा संप्रदाय का द्योतक न मानकर, जातिवाची स्वीकार किया है। जो भी भारत का० निष्ठापूर्ण निवासी है वह हिन्दु है, उसकी धार्मिक वा सांप्रदायिक मान्यताएं कुछ भी हो। हिन्दुत्व की रक्षा की समस्या पर विचार करते हुए समाधानरूप में अनेक मननीय सुझाव लेखक ने दिये हैं।

पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तक को पढ़ें, गुनें और आचरण में लायें।

विश्वदेव
मन्त्री,
वेद-संस्थान, अजमेर

अजमेर
१६ जुलाई, १९७३

सुनिये

'अस्तित्व की रक्षा' शीर्षक से जो लेखमाला मासिक 'सविता' में प्रकाशित हुयी थी वह 'हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा' नाम से पुस्तकाकार की गई है। उद्देश्य पुस्तिका के नाम से ही स्पष्ट है। आशा है, हिन्दु जनता इसका स्वागत करेगी और हिन्दु नेता इसका क्रियान्वयन करेंगे।

जंगली और सभ्य, सभी जातियां अपनी अपनी जाति के अस्तित्व की रक्षा और उत्थान में तत्पर हैं और कोई भी उनके इस कार्य को साम्प्रदायिक नहीं बताता है। किन्तु हिन्दु जब अपनी जाति के अस्तित्व की रक्षा और उत्थान की बातें कहते और करते हैं तो उन्हें साम्प्रदायिक बताया जाता है। भारतीय राजनीति का यह एक स्वार्थान्ध, घिनौना खेल है, जिसकी लेशमात्र परवाह नहीं की जानी चाहिये। एक-दो राजनैतिक पार्टियों को छोड़कर यहां की सभी राजनीतिक पार्टियों में सम्मिलित हिन्दु अपने आपको हिन्दु कहने तक में शर्माते और घबराते हैं; यह अजीब कैफ़ियत है।

इस सबके बावजूद हिन्दु जाति के अजेय और अटूट संगठन के लिये प्राणपण से प्रयत्न और पुरुषार्थ किया ही जाना चाहिये।

विद्यानन्द 'विदेह'
अध्यक्ष,
वेद-संस्थान, अजमेर-दिल्ली

२४ जून, १९७३
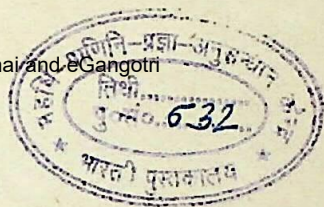
कहां क्या ?

पृष्ठ सं.

१	जाति का नाम	१
२	हर नागरिक की हिन्दुता	३
३	हिन्दु मिशन की आवश्यकता	५
४	देश का नाम *हिन्दुस्थान*	७
५	*हिन्दु* शब्द पर पुनर्विचार	१०
६	देशप्रेम और राष्ट्रनिष्ठा की आवश्यकता	१३
७	जाति में आपसी सहयोग की आवश्यकता	१५
८	वर्ण और आश्रम	१९
९	हिन्दी भाषा	२२
१०	"	२५
११	"	२७
१२	अस्पृश्यता	२९
१३	"	३१
१४	"	३४
१५	"	३६
१६	जाति के महापुरुष	४०
१७	सनातन धर्म और आर्यसमाज का आपसी सहयोग	४३
१८	महापुरुषों के चरितों का लेखन और प्रचार	४५
१९	परिवार-नियोजन और जनगणना	४७
२०	सम्प्रदायों का नियमन	४९
२१	अस्तित्व की रक्षा का मूल सूत्र	५१

हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा

हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा

: १ :

अपना अस्तित्व जितना व्यक्ति को प्रिय होता है उतना ही जातियों को। यहूदी जाति ने, जिसकी कुल जनसंख्या कश्मीर की जनसंख्या से भी कम है, अपनी जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिये ही इस्राइल राज्य की स्थापना की है। जाति के अस्तित्व की रक्षा में उसकी संस्कृति, सभ्यता, कलाकृति, इतिहास, परम्परा, आचार, विचार, धर्म, आदि अमूल्य निधियों की रक्षा निहित है। यदि इन निधियों की रक्षा का जातिरक्षा के साथ सहचार न हो तो फिर जाति की रक्षा सर्वथा निरर्थक होजाती है।

आर्यावर्त की *आर्य जाति*, जिसे विगत एक हज़ार वर्षों से *हिन्दु जाति* कहा जारहा है, संसार की वह प्राचीनतम जाति है जिसने विश्व को सार्वभौम मानवीय देनें तो दी ही हैं, धर्म, ज्ञान, विज्ञान और सत्याचार की शाश्वत देनें भी दी हैं। यदि इस जाति का अस्तित्व ख़तरे में पड़ गया तो, सच जानिये, जो कुछ सत्य, शिव, सुन्दर और शाश्वत है वह सब ओझल होजायेगा और मानवता के शाश्वत मूल्य अनादृत ही नहीं, समाप्त होजायेंगे।

पिछले दिनों मैंने कतिपय आर्यसज्जनों के दो चार ऐसे लेख पढ़े जिनमें मुस्लिम विद्वानों द्वारा रचित लुग़तों [शब्दकोषों] के हवाले से यह सिद्ध किया गया था कि *हिन्दु* शब्द का अर्थ *चोर, डाकू, ग़ुलाम, काफ़िर, ज़न-फ़रोश,* इत्यादि है, अतः हिन्दुओं को *हिन्दु* शब्द का बहिष्कार करके अपने आपको *आर्य* कहना और कहलाना चाहिये। ऐसे तो, कल को कोई मुस्लिम विद्वान् अपनी लुग़त में *आर्य* शब्द का भी

हिन्दु शब्द का जैसा अर्थ छाप देगा, तो क्या *आर्य* शब्द का भी बहिष्कार करने की व्यवस्था दी जायेगी ? हिन्दु शब्द के यदि उपर्युक्त अर्थ होते तो विदेशियों से निरन्तर लोहा लेनेवाले आर्य वीर कदापि अपने आपको *हिन्दु* कहा जाना स्वीकार न करते । यह बात भी सरासर ग़लत है कि *हिन्दु* नाम मुस्लिम आक्रान्ताओं तथा शासकों की देन है । असली बात यह है कि जब विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों ने इस देश में दुष्टाचार और दुराचार किया तो इस देश के वीरों ने स्वयं अपने आपको हिन्दु कहकर उनका मुक़ाबला किया । *हिनस्ति दुष्टान्, दुरितानि च यः स हिन्दुः*=जो दुष्टों का हनन और दुराचारों का दलन करता है वह हिन्दु है । यही हिन्दु शब्द की व्युत्पत्ति और इतिहास है । कोई भी जाति शत्रुओं द्वारा रखे गये गन्दे अर्थवाले नाम को स्वीकार नहीं कर सकती ।

मैं मानता हूँ कि हमारा आदि नाम *आर्य* है और *आर्य* शब्द *हिन्दु* शब्द की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेरक तथा व्यापक है । यह भी निश्चय है कि अन्ततः यह देश *आर्यावर्त* ही कहलायेगा और यह जाति *आर्य जाति* ही कहलायेगी । पर वस्तुस्थिति यह है कि इस जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिये जिस सुसंगठन की आवश्यकता है वह आज *हिन्दु* नाम से ही सिद्ध होगी, अन्यथा नहीं । आर्यजनों से मैं कहूंगा कि वे गौण बातों को पीछे करके मुख्य समस्याओं पर अपने विचारों को केन्द्रित करें । मेरी स्वयं की भी अभी तक यह मान्यता चली आ रही थी कि *हिन्दु* नाम विदेशियों की देन है । हाल ही में कुछ खोजपूर्ण ऐतिहासिक लेख मेरी दृष्टि में आये और, परिणामस्वरूप, मेरी उपर्युक्त धारणा बनी । प्रथम प्रश्न अस्तित्व की रक्षा का है । अस्तित्व रहेगा तो नाम बदलने में दिक़्क़त न होगी । हिन्दु जाति पतझड़ में वृक्षों से झड़े पत्तों की तरह दुर्गति की हवा से इधर उधर उड़ रही है । बाग़बानों को इस उपवन में पुनः बहार लाने के लिये अब अविलम्ब सुसज्ज और सुसंगठित होजाना चाहिये ।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि भारत, भारतीयता और जो कुछ भारतीय है, उससे केवलमात्र हिन्दुओं को ही लगाव है, अन्य किसी को नहीं। और यह भी निश्चित है कि इस पृथिवी पर निवास करनेवाली समग्र मानवजातियों में से केवल हिन्दु जाति ही योगजाति है। शेष जातियां तो भोगजातियां ही हैं। हिन्दु जाति को अपने स्वरूप में अवस्थित होकर पृथिवी की समग्र मानवजातियों को योग-जीवन-पद्धति से युक्त करना है।

: २ :

अपने राष्ट्रपति-काल में श्री राधाकृष्णन् ने एक बार कहा था, 'Here, in India, unfortunately, change of religion means change of race and nationality.'—यहां, भारत में, दुर्भाग्य से धर्म के परिवर्तन का अर्थ है जातीयता तथा राष्ट्रीयता का परिवर्तन। उनके उस कथन में एक वास्तविकता निहित थी। तभी से मेरे मस्तिष्क में एक गहन समस्या घूमती चली आरही है। जैसा कि एक बार श्री छागला ने, जब वे केन्द्रीय-शिक्षा-मन्त्री थे, कहा था, 'भारत के सभी मुसलमान हिन्दुओं में से धर्मपरिवर्तित हैं और उनकी नसों में हिन्दुओं का ही रक्त बह रहा है।' श्री छागला की यह उक्ति ईसाइयों के बारे में भी अक्षरशः चरितार्थ होती है। भारतीय ईसाइयों की नसों में भी हिन्दुओं का ही रक्त है। यह कैसा दुर्विपाक है कि रक्त से हिन्दु होते हुए भी मुसलमान और ईसाई हर प्रकार से अहिन्दु हैं! हिसाब से तो हिन्दुस्थान मे निवास करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दु ही कहलाना चाहिये, उसका धार्मिक विश्वास कुछ भी क्यों न हो।

अजमेर में एलेक्जेण्डर नाम के एक ईसाई सज्जन हैं। कुछ वर्ष हुए, इस संदर्भ में उन्होंने मुझसे कहा था, 'I am Christian by faith and Hindu by race.'—मैं धार्मिक विश्वास से ईसाई हूँ और जातीयता से हिन्दु। मुझे लगा कि उनके उस कथन में समस्या का एक कारगर हल निहित था। यदि हिन्दुस्थान के मुसलमानों और

ईसाइयों ने यह स्वीकार किया होता कि धार्मिक विश्वास से मुस्लिम वा ईसाई होते हुए भी वे जातीयता से हिन्दु हैं, तो भारत में अनेक जातियां न होकर एक जाति होती, और, परिणामस्वरूप, भारत अराष्ट्र न होकर एकराष्ट्र होता। *समान जातीयता* राष्ट्र की परिभाषा का मूलसूत्र है। जातीयता एक होने पर ही राष्ट्र वनता है और जाति एवं राष्ट्र का इतिहास तथा उसकी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, वेश, परम्परा, आस्था, मान्यता, आचार, विचार—सब कुछ समान रहता है। श्री एलेक्ज़ेण्डर की उपर्युक्त भावना का मैंने सारे देश में प्रचुर प्रचार किया है, किन्तु उभय वर्गों ने उसे न सराहा है, न अपनाया है।

भारत की सरकारें तथा भारतीय राजनीतिक नेता दिन रात राष्ट्रीय एकता का अरण्यरोदन करते रहते हैं। उन्हें यह क्यों नहीं सूझ रहा है कि भारत में अभी राष्ट्र है ही कहां ? जिस देश में यह स्थिति है कि पाठ्य पुस्तकों में कहीं राम, कृष्ण वा दयानन्द का ज़िक्र हो तो हिन्दुरक्त मुस्लिम वा ईसाई छात्र उन पुस्तकों का अवलोकन तो दूर, उन्हें छूना तक नहीं चाहते, उस देश में राष्ट्रीय एकता मूर्खों का सुखस्वप्न नहीं है तो और क्या है ? हिन्दु छात्रों में तो वह उदारता है कि वे किसी भी धर्म के सन्तों तथा वीरों का चरित और चरित्र बिना किसी आपत्ति के पढ़ते और सुनते हैं; और मैं इसकी सराहना करता हूँ। मैं स्वयं अपने वेदोपदेशों में मोहम्मद और ईसा की उक्तियां सुनाता हूं, परन्तु क्या मजाल कि कोई मौलवी वा पादरी अपने उपदेशों में हिन्दु महापुरुषों में से किसी का भूलकर भी नामोल्लेख करे।

अब तो स्थिति की कोमलता इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि भारत के मुसल्मानों ने मुस्लिम जातीयता के नाम पर जहां भारत का अंगभंग करके पाकिस्तान का निर्माण किया, जहां सिखों ने सिख जातीयता के नाम पर सिखिस्थान [पंजाबी सूबा] बनाया वहां द्रविड-स्थान, क्रिश्चियनस्थान, अछूतस्थान, बौद्धस्थान, मुस्लिमस्थान, जाट-स्थान, आदिवासिस्थान के गगनभेदी नारे भी आकाश में गूंज रहे हैं।

स्थिति की कोमलता में और भी वार्धक्य होजाता है जब न केवल सिख, अपि तु अम्बेदकरवादी हिन्दु, आदिवासी हिन्दु, अछूत हिन्दु भी अपने को हिन्दुतनू से पृथक् करने की चेष्टायें करने लगे हैं। भयावह होने के अतिरिक्त यह स्थिति हिन्दु जाति के भविष्य के लिये अनिष्ट-सूचक भी है।

इन परिस्थितियों में हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न जटिल से जटिलतर होता जारहा है और मेरी सार्वभौम मानवत्व अथवा विश्वकौटुम्ब्य की नीति में दरार पड़ती दिखाई देने लगती है। क्या आत्मविनाश की राख से विश्वबन्धुत्व का भव्य भवन निर्मित हो सकेगा ? हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा करते हुए ही मुझे सार्व-भौमिकता की संसाधना करनी होगी।

: ३ :

आवश्यकता हिन्दुओं को तत्काल सुसंगठित किये जाने की है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिये जाति-पांति को मिटाने के सकल प्रयास निष्फल सिद्ध हुये हैं और होंगे। आवश्यकता छुआ-छूत को मिटाने की है। रोटी और बेटी, वा भोजन और विवाह की जो रोक-टोक है उसे मिटाया जा सकता है। उसके मिटने पर जाति-पांति के रहते हुए भी हिन्दु जाति का विशाल तनू सुगठित और अभेद्य होजायेगा। बाधक खान-पान और रहन-सहन के स्तर की असमानता है। इस असमानता की चिकित्सा हिन्दु-मिशनरियों द्वारा शिक्षा तथा प्रशिक्षा से की जा सकती है। यदि हिन्दुओं के सभी वर्गों के आहार और आचार का स्तर समान होजाये, साथ ही स्वच्छता तथा सुसंस्कार सम्पूर्ण हिन्दुतनू में सम्यक् समंकित होजायें तो हिन्दुसंगठन सर्वथा दराररहित होजाये।

सनातन धर्म और आर्यसमाज, ये दो ही वर्ग हैं, जिनके एकीभूत सहयोग से यह बहुवाञ्छनीय साध सिद्ध हो सकती है। दोनों की अभिन्न, सम्मिलित शक्ति से ही यह साध पूर्ण होगी। इनके पारस्परिक कटाक्ष तथा टकराव से हिन्दु जाति की अपार हानि हुई है। मान्यताओं

के भेद से मानसभेद तथा लक्ष्यभेद कदापि न होना चाहिये। एक ऐसे *हिन्दु मिशन* की सद्यः स्थापना होनी चाहिये जिसमें हिन्दु जाति के सभी वर्ग समान रूप से साधन अर्पित करें और कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करें। हिन्दु मिशन को अर्पित होनेवाले देवों और देवियों को क्षेत्रों में कार्य करने का पर्याप्त प्रशिक्षण देना होगा, जो साधना-शिविरों के द्वारा दिया जा सकता है। राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ इस दिशा में जो कार्य कर रहा है उससे शहरी क्षेत्रों में कुछ भावात्मक कार्य हुआ है, किन्तु उन क्षेत्रों में, जहाँ पिछड़े हुये अथवा उपेक्षित लाखों, करोड़ों हिन्दु क्रिश्चिअन मिशनरियों तथा मुस्लिम तब्लीग़ियों के अधार्मिक षड्यन्त्रों का शिकार होरहे हैं, उनकी लेशमात्र पहुंच नहीं हुई है।

हिन्दु मिशन को उपेक्षित हिन्दु-क्षेत्रों में काम करने में अधिक कठिनाई न होगी, यदि उसके साधक वहां स्थायी रूप से निवास करके कार्य करें। ऐसा करने से बहुत स्वल्प काल में हिन्दुओं का विधर्मीकरण बन्द हो जायेगा। तत्पश्चात् वह युग आयेगा जिसमें सभी हिन्दुरक्त विधर्मियों को विशुद्ध साधना से पुनः अपनी हिन्दु जाति में लाया जायेगा। हमें क्रिश्चियन मिशनरियों तथा मुस्लिम तब्लीग़ियों से न टकराने की आवश्यकता होगी, न उनके-से षड्यन्त्र करने की। हिन्दु मिशन का काम नितान्त श्रेष्ठ और शुद्ध नीतियों के साथ होगा। स्नेह, सेवा, शिक्षा और प्रचार—इस साधनचतुष्टय से हिन्दु मिशन देश में भी और विदेशों में भी सफलतापूर्वक, निर्बाधता के साथ व्यापेगा।

हाल ही में यह जानकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ कि *विश्व-हिन्दू-परिषद्* हिन्दुरक्षण तथा हिन्दुसंगठन का अच्छा काम कर रही है। यह खेद की बात है कि वे अबोध लड़कों को बिना किसी विशेष प्रशिक्षण के कार्यक्षेत्रों में भेज रहे हैं और इसी लिये प्रगति तथा व्याप्ति उतनी तेज़ी से नहीं होरही है जितनी तेज़ी से होनी चाहिये।

यह साध फ़ालतू-समय कार्यकर्ताओं तथा नेताओं के बूते की कदापि नहीं है। इसके लिये गृहस्थमुक्त, अर्पित जीवनों की आवश्यकता होगी।

कार्यालयों तथा केन्द्रों की व्यवस्था में गृहस्थियों के फ़ालतू समय का उपयोग हो सकता है। परन्तु जहां तक मिशनकार्य का सम्बन्ध है वह तो गृहस्थमुक्त, अर्पित जीवनों द्वारा ही सुसम्पादित होगा। हिन्दुग्रों में लाखों की संख्या में अवकाशप्राप्त तथा पेंशनभोगी देव-देवियां विद्यमान हैं। उनमें से असंख्य देव-देवियां अपनी अपनी मासिक पेंशन के आश्रय से ही मिशनकार्य सुचारुता के साथ निर्वहन कर सकेंगे। वैसे हिन्दु जाति के पास अथाह धन है। काम को दाम और सलाम की कभी कमी नहीं रहती है।

हिन्दु मिशन को न किसी का विरोध करना है, न किसी का अहित करना है। उसे तो विरोध में निरोध करते हुए, विरोधियों के प्रति भी स्नेह और सद्व्यवहार करना है। हिन्दु एक धर्मनिष्ठ और धर्मप्राण जाति है। उनके मिशनरी सांसारिक प्रलोभनों और मक्कारियों से वचकर और मानवीय साधनों से सुसज्ज होकर कार्य करेंगे। सद्यः एक सर्वोपरि, सार्वभौम हिन्दु मिशन की स्थापना की जानी चाहिये। हिन्दुहितकारिणी सभी संस्थाओं को उसकी व्यवस्था में संगठित होकर कार्य करना चाहिये। सनातनधर्मियों और आर्यसमाज के संन्यासियों तथा वान-प्रस्थियों से इसका आरम्भ आसानी से हो सकता है। कठिनाई यह है कि हिन्दुओं का विरक्त वर्ग अधिकांशतः आरामतलब और उद्यमहीन होगया है।

: ४ :

हिन्दुसंगठन का लक्ष्य प्रतिकार, हिंसा वा शोषण न कभी था, न अब है, न कभी होगा। आर्य-युग से लेकर हिन्दु-युग तक का अद्यावधि इतिहास साक्षी है कि आर्य वा हिन्दु के रक्त और संस्कार में अन्याय, पक्षपात, अत्याचार का लेश भी नहीं है। हिन्दु जाति ने धर्म, सम्प्रदाय वा मज़हब के नाम पर कभी शस्त्र नहीं उठाये; यदि उठाये तो वह राष्ट्र, देश वा राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिये। सिख गुरुओं तथा छत्रपति शिवा ने जो हथियार संभाले वे हिन्दुओं के बलात् विधर्मी बनाये जाने के विरुद्ध संभाले

थे, किसी को बलात् हिन्दु बनाने के लिये नहीं। हिन्दुस्थान के हिन्दु-राज्यों में अहिन्दुओं को किसी भी प्रकार कभी बाधित, अपमानित वा पीड़ित नहीं किया गया। कोई हिन्दु राज्य ऐसा न था जिसमें अहिन्दुओं को अपने धार्मिक वा सामाजिक अधिकारों के लिये आन्दोलन, संघर्ष वा सत्याग्रह करना पड़ा हो। तद्विपरीत, कोई नवाबी [मुस्लिम राज्य] ऐसी न थी जिसमें हिन्दुओं को अपने धार्मिक और सामाजिक अधिकारों के लिये आन्दोलन न करना पड़ा हो। नवाबियों में ही नहीं, गोवा के ईसाई राज्य में भी हिन्दुओं के धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों की लेशमात्र छूट न थी। ये पंक्तियां मैंने केवल इस अभिप्राय से अंकित की हैं कि मेरी हिन्दुसंगठन की प्रेरणा के विषय में किसी भी वर्ग वा वर्गों में, जिनमें कांग्रेसी हिन्दु भी सम्मिलित हैं, किसी प्रकार की भ्रान्ति अथवा ग़लत-फ़हमी न फैलने पाये। मैं सदा से सारी पृथिवी को अपना एक अभिन्न गृह और पृथिवीस्थ समग्र मानवप्रजा को अपना एक अभिन्न परिवार समझता रहा हूं और समझता रहूंगा,—क्योंकि उन सबको मुझे वेद-विचार और वेदाचार से युक्त करना है। हिन्दुसंगठन की मेरी धारणा में हिन्दुस्थान का सर्वोदय और विश्व का कल्याण निहित है।

हिन्दुसंगठन की दिशा में प्रथम पग देश के नामकरण का है। देश के विधान की रचना के क्रम में जब नाम का प्रश्न आया तो विधाननिर्मात्री सभा में सम्बन्धित धारा प्रस्तुत करने से पूर्व श्री भीमराव अम्बेदकर, श्री जवाहरलाल नेहरू तथा मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने निजी तौर से उस पर परस्पर विचार किया था। आर्य-समाजी विचारधारा के कतिपय विधान-सभाइयों ने श्री नेहरू को मौखिक तथा लिखित सुझाव दिया था कि विधान में देश का नाम *आर्यावर्त* रखा जाये। स्वयं श्री अम्बेदकर देश का नाम *हिन्दुस्थान* अंकित करना चाहते थे। मौ० आज़ाद की राय थी कि देश का नाम 'हिन्दुस्थान' अथवा 'आर्यावर्त' रखने से हिन्दुओं के मानस में अवाञ्छ-नीय अहंकार के संस्कार जमेंगे और अहिन्दुओं की भावनाओं को ठेस

लगेगी। इस द्विधा में श्री नेहरू ने *भारत* नाम की पेशकश की, जिसे मौ० आज़ाद ने सहर्ष और श्री अम्बेदकर ने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया। विधाननिर्मात्री सभा ने जब इस नाम को पास कर दिया तो हिन्दुओं में हर्ष की लहर दौड़ गयी और अहिन्दु प्रजा ने भी उस पर सन्तोष प्रकट किया। आज मैं अनुभव करता हूं कि यह अच्छा नहीं हुआ। मुसलमानों और अंगरेज़ों के शासन में इस देश का नाम *हिन्दुस्थान* रहा तो हिन्दुओं के मानस में सदैव यह भावना रही कि 'यह हिन्दुओं का देश' है। *भारत* नाम से वह भावना विलीन होकर अनार्यजुष्ट *सेक्यूलेरिज़म* [धर्मनिरपेक्षता] का बोल-बाला हो रहा है और देशनिष्ठा क्षीण होती जारही है। अतः मैं अब चाहता हूं कि इस देश का नाम *हिन्दुस्थान* ही बना रहे। इंग्लिशमैनों के देश का नाम *इंग्लैण्ड* और रशियनों के देश का नाम *रशिया* रह सकता है, यद्यपि उनमें विभिन्न जातियों के नागरिक निवास करते हैं, तो प्रमुखतया हिंदुओं तथा विभिन्न जातियों के इस देश का नाम *हिन्दुस्थान* रहने पर किसी को आपत्ति क्यों होनी चाहिये? कविवर इकबाल ने तो गर्व के साथ गाया था—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुल्बुलें हैं इसकी यह गुलिस्ताँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना।
हिन्दी हैं हमवतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा॥

हिन्दी शब्द प्रत्यक्षतः *हिन्दु* शब्द का पर्यायवाची है। *हिन्दोस्तान* तथा *हिन्दुस्तान*, ये दोनों शब्द *हिन्दुस्थान* शब्द के अपभ्रंश हैं। अपभ्रष्ट शब्दों को पुनः शुद्ध रूप में प्रस्थापित करने से, कोई हानि न होकर, लाभ ही होता है। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी *हिन्दुस्थान* नाम अतिशय कारगर सिद्ध होगा। उस अवस्था में धर्म से ईसाई वा मुसलमान होने पर भी इस देश के ईसाइयों और मुसलमानों को राष्ट्रीयता से हिन्दु माने जाने में गर्व ही होना चाहिये क्योंकि वे हिन्दुस्थान के हिन्दुरक्त निवासी हैं। रूस के मुसलमान अपने को रूसी, चीन के मुसलमान अपने को

चीनी, जापान के मुसल्मान अपने को जापानी कहते हैं। फिर हिन्दुस्थान के ईसाई-मुसल्मान अपने को *हिन्दुस्थानी*, वा संक्षेप में *हिन्दु* कहेंगे और मानेंगे तो राष्ट्रीय एकता अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होगी। *हिन्दुस्थान* नाम से हिन्दुओं के मानस में देश के प्रति आत्मनिजता के संस्कार समंकित होंगे और अहिन्दुओं के मानस में हिन्दुओं के प्रति आत्मीयता उमड़ेगी। वह कैसा सुहावना वातावरण होगा! इस सन्दर्भ में मैं किसी प्रकार के आन्दोलन की सलाह न देकर यह प्रेरणा करूंगा कि हिन्दुमात्र को ही नहीं, देश के प्रत्येक नागरिक को आत्मनिष्ठा के साथ अपने इस प्रिय देश को *हिन्दुस्थान* और अपने इस प्रिय राष्ट्र को *हिन्दु राष्ट्र* कहना चाहिये। अहिन्दु नागरिक ऐसा करके अपने देशप्रेम और राष्ट्रप्रेम का परिचय देरहे होंगे।

: ५ :

हिन्दु और *हिन्दुस्थान*—इन दो नामों पर आपत्तियां हुई हैं। उनका यहां समाधान करना उपादेय होगा। जैसा कि मैंने प्रथम परिच्छेद में लिखा है, ये दोनों नाम एक हजार वर्ष से अधिक पुराने नहीं हैं। एक सुविद्वान् का यह लिखना कि मेरे उस लेख से यह ध्वनि निकलती थी कि यह भारतीयों का प्राचीन.........नाम है, सही नहीं है। भाषा-विशारदों ने *हिन्दु* शब्द की व्युत्पत्ति जहां सिन्धु नदी के नाम के साथ जोड़ी है वहां वेद के कतिपय विद्वान् इसे वेद के इन्दु शब्द का वर्धित रूप मानते हैं। ये दोनों ही मान्यतायें मुझे अपील नहीं करती हैं।

हिन्दु नाम कितना पुराना है, यह एक नितान्त गौण प्रश्न है। मुख्य प्रश्न यह है कि यह नाम किसकी देन है और वह किस अर्थ में दिया गया था। हिन्दुस्थान में मुस्लिम बादशाहों के जीवनचरितों तथा *शाहनामों* में *हिन्दु* और *हिन्दुस्थान* नामों का कहीं भी गर्हित अर्थों में प्रयोग नहीं हुआ है। यहां के मुस्लिम शासकों के इतिहास में कहीं लेशमात्र यह ध्वनि नहीं है कि ये नाम मुस्लिम शासकों की हेयभावना-जन्य देन हैं।

भारत पर सर्वप्रथम मुस्लिम आक्रमण आज से नौ सौ वर्षों पूर्व सुवक्तगीन ने किया था। उससे पूर्व तथा पश्चात् अरब, ईरान और काबुल के जितने पर्यटक तथा साहित्यकार हमारे देश में आये, उन पर्यटकों के विवरणों और उन साहित्यकारों की रचनाओं में कहीं एक शब्द भी इस मान्यता का पोषक नहीं है कि *हिन्दु* तथा *हिन्दुस्थान* नाम आक्रान्ता मुस्लिमों की देन हैं और वह भी गन्दे अर्थों में। उन विवरणों तथा रचनाओं से यह भी प्रकट होता है कि सुवक्तगीन के आक्रमण से पूर्व भी यह जाति *हिन्दु* और यह देश *हिन्दोस्तान* के नाम से उल्लिखित होता था। इन दोनों नामों का प्रयोग उनमें *अहतराम* [सम्मान] के साथ किया गया है। किसी किसी ने तो इस देश को *पाक सर ज़मीने हिन्द* लिखा है। *अहदे सुवक्तगीन* में दोनों नाम आदर के साथ लिखे गये हैं।

गत महिनों में वीर सावरकर की रचनाओं के अवलोकन ने इस विषयक मेरे चिन्तन तथा मान्यता को ऐसा झकझकोरा कि मेरी आंखों के सामने इतिहास अपने वास्तविक स्वरूप में आ खड़ा हुआ। सन्त विनोबा भावे के इस विषय पर कतिपय लेखों ने भी मेरे विचारपरिवर्तन में पर्याप्त प्रभाव डाला है। मैं पूर्णतः विश्वस्त हूं कि चर्चित दोनों ही नाम न विदेशी मुस्लिमों की देन हैं, न उन्होंने कभी कहीं इनका प्रयोग हेय शब्दों में किया है। जिन दो मुस्लिम मुल्लाओं ने अपने अपने लुग़त में *हिन्दु* शब्द के निन्दित अर्थ किये हैं, उन्होंने अपने अर्थों की न कोई धातुपरक व्युत्पत्ति पेश की है, न उनका इतिहास दिया है। किसी भी शब्द के बेबुनियाद अर्थ कोई अर्थ नहीं रखते हैं।

यदि हिन्दु शब्द मेरुतन्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी पुराने ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं है तो यह संस्कृत के साहित्यकारों की बौद्धिक कुण्ठा का सुबूत है। एक हज़ार वर्ष से पूर्व के संस्कृत-ग्रन्थों में इस शब्द का न होना स्वाभाविक है। संस्कृत इस देश की अपनी ही भाषा है और उसमें देश तथा जाति के सहस्राब्द से प्रचलित नामों का उल्लेख न होना गौरव का नहीं, लज्जा का विषय है। एक ओर अंगरेज़ी है जो संसार के लाखों

शब्दों को पचा चुकी है और अपने शब्दभंडार में प्रतिवर्ष बीस हजार शब्द पचा लेती है। दूसरी ओर संस्कृत है जो स्वदेश के दो व्यापक शब्दों को न पचा सकी, जब कि उसकी धातुओं तथा व्याकरणों में इतनी क्षमता है कि विश्व की किसी भी भाषा के किसी भी शब्द को वह सहजतया अपने रूप से रूपित कर सकती है।

जिस प्रकार डेढ़-दो सौ वर्षों के अंगरेज़ी राज्य में हमने विदेशी शासकों द्वारा प्रदत्त *इण्डिया* तथा *इण्डियन* शब्दों को स्वीकार कर लिया वैसे ही मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदत्त *हिन्दु* और *हिन्दुस्थान* नामों को हमने स्वीकारा होगा—यह तर्क टिकाऊ नहीं है। *इण्डिया* तथा *इण्डियन* नामों को इस देश की, सम्पूर्ण तो क्या, अधिकांश जनता ने भी स्वीकार नहीं किया है। इन नामों का प्रचलन देश के उन कुछ सहस्र अथवा लाख व्यक्तियों तक ही सीमित है जो अपना सब काम-काज अंगरेज़ी में ही करने के अभ्यस्त हैं। साथ ही, यह बात भी है कि इन दोनों नामों के अर्थ किसी भी प्रकार से हेय नहीं किये जाते हैं। फिर, ये शब्द भी *हिन्दु* के ही तो रूपान्तर हैं।

विचारणीय मूल प्रश्न यह है कि विश्व के इतिहास में क्या कहीं कोई एक भी उदाहरण ऐसा है कि किसी देश ने विदेशियों द्वारा प्रदत्त, जाति और देश के गर्हित अर्थवाले नामों को एक दिन के लिए भी स्वीकार किया हो? निश्चय ही इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट और निश्चित नहीं है। *हिन्दु* शब्द कब, कैसे, किस प्रकार प्रचलित हुआ और संस्कृत-व्याकरण की दृष्टि से उसकी व्युत्पत्ति तथा अर्थ क्या क्या हैं, यह खोज का विषय हो सकता है। आज जब कि निश्चित मान्यताओं तक की नये सिरे से खोजें होरही हैं, इस शब्द की नये सिरे से ऊहापोह कदापि आपत्तिजनक नहीं। पर इस साधारण-सी बात पर उत्तेजना क्यों? मेरे आदिम लेख की निम्नोद्धृत पंक्तियों पर विद्वान् आलोचकों ने ध्यान दिया होता तो उनकी ओर से कटुता तथा उत्तेजना का प्रदर्शन न होता, 'मैं मानता हूं कि हमारा आदि नाम *आर्य* है और *आर्य* शब्द हिन्दु शब्द

की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेरक तथा व्यापक है। यह भी निश्चय है कि अन्ततः यह देश *आर्यावर्त* ही कहलायेगा और यह जाति *आर्य जाति* ही कहलायेगी। पर वस्तुस्थिति यह है कि इस जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिये जिस सुसंगठन की आवश्यकता है वह आज *हिन्दु* नाम से ही सिद्ध होगी, अन्यथा नहीं। आर्यजनों से मैं कहूंगा कि वे गौण बातों को पीछे करके मुख्य समस्याओं पर अपने विचारों को केन्द्रित करें।'

मैं पुनः दोहराता हूं कि *हिन्दु* नाम के बुरे अर्थ होते तो विदेशियों से निरन्तर लोहा लेनेवाले, आर्य वीर अपने आपको *हिन्दु* और अपने देश को *हिन्दुस्थान* कहलाना कदापि स्वीकार न करते। फिर, जिस नाम को जाति-की-जाति स्वीकार कर चुकी है उसके विषय में अपावन भावनाओं का द्योतन जातीयता की दृष्टि से किसी भी प्रकार हितकर न होगा। इस सम्बन्ध में यह सूचना कुतूहलपूर्ण है कि मासिक 'जनज्ञान' में एक उद्धरण प्रस्तुत किया गया था जिसमें महर्षि दयानन्द द्वारा हिन्दु और हिन्दुत्व की गरिमा का वर्णन किया गया है। यह बात भी दिलचस्पी से ख़ाली नहीं है कि स्वयं आलोचक भी अपने लेखों तथा वक्तव्यों में *हिन्दु* शब्द का उसी प्रकार प्रयोग करते हैं जिस प्रकार अन्य सब हिन्दु। *हिन्दुस्थान* कहलाने से ठीक पूर्व यह देश और इसके निवासी क्या कहलाते थे, गवेषकों द्वारा इस तथ्य की गवेषणा भी करणीय है।

: ६ :

हमारी मातृभूमि का हज़ारों मीलों का जो खण्ड चीन ने अपहृत किया हुआ है, उसका जो भूभाग पाकिस्तान ने दबाया हुआ है, हम उसे किसी भी प्रकार से वापिस लेकर ही दम लेंगे, ऐसी भावना जब देश की जननियां गर्भ से ही हिन्दुस्थान की भावी सन्तति में संस्काररूपेण अंकित करेंगी तभी हमारा खण्डित देश पुनः अखण्ड बन पायेगा।

देश के विभाजन से पाकिस्तान का निर्माण जहां हमारे राजनीतिक दिवालियापन का प्रमाण था, वहां वह हिन्दु प्रजा की अक्षमता तथा कातरता का भी प्रमाण था। किसी भी देश का विभाजन, विश्व के

इतिहास में, सम्बन्धित देश के नेताओं तथा नागरिकों की सहमति से नहीं हुआ। कोरिया, वियतनाम, जर्मनी, आदि का विभाजन अन्तरराष्ट्रीय बलात्कार से हुआ था, न कि उनके नेताओं तथा नागरिकों की स्वीकृति से। पर यहां हमारे देश का विभाजन हुआ स्वयं हमारे नेताओं तथा नागरिकों की स्वीकृति से। घावों पर नमक छिड़कना यह कि हमारे अन्तरराष्ट्रीय-नीति-विशेषज्ञ नेता उपर्युक्त विभक्त देशों के एकीकरण के तो दिलदादह हैं, किन्तु वे विभक्त हिन्दुस्थान के एकीकरण की चर्चा को पागलपन से भरी *साम्प्रदायिकता* की सञ्ज्ञा देते हैं। इस पृथिवी के सम्पूर्ण इतिहास में हम ही वे बेग़ैरत हैं जिन्होंने स्वयं अपनी स्वीकृति से, अपनी आंखों के सामने, बिना किसी प्रतिकार के, अपनी मातृभूमि के टुकड़े टुकड़े होने दिये, जिन्होंने देश के विभाजन पर जल्से किये और जश्न मनाये, जिन्होंने, विभाजन की पीड़ा से सिसकती हुई मातृभूमि की छाती पर शराब पी-पीकर नृत्य किये, जिन्होंने मातृभूमि के घावों पर खुशी से दीप जलाये।

तभी से अन्तर्विभाजन का दुश्चक्र निरन्तर घूम रहा है। कश्मीर के विभाजन के उपरान्त हैदराबाद राज्य का विभाजन हुआ, फिर मद्रास राज्य का, फिर बम्बई राज्य का और फिर पंजाब राज्य का। अब स्वीकृति दी जा चुकी है असम राज्य के विभाजन की। दक्षिण में आवाज़ उठ रही है मुस्लिम ज़िलों के निर्माण की। पंजाब में तैयारियां होरही हैं सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सिखिस्थान के निर्माण की, तो तमिलनाडु से गूंज उठ रही है सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र द्रविडस्थान के निर्माण की। यह सब अनिष्टसूचक और भविष्यरोधक है।

सब व्याधियों की एकमात्र चिकित्सा है हिन्दुस्थान के जन जन में देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा की भावना का संचार। घायल स्वतन्त्रता की प्राप्ति के क्षण से ही शासन और शासित इस दिशा में कुछ कारगर क़दम उठाते तो आज यह दुरवस्था न होती। मुझे इस दिशा में आशा की एक कोर भी दिखाई नहीं देती कि यहां का अहिन्दु-वर्ग सामूहिक रूप से निकट भविष्य में देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ बन सकेगा। अहिन्दु-

वर्ग में अपवादरूपेण इने-गिने व्यक्ति देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ हुये हैं, आज भी हैं और कल भी होंगे। मेरी मान्यता तो यह है कि हिन्दु हों वा मुसल्मान, ईसाई हों वा पारसी, कोई भी क्यों न हों, जिन्हें देश की वेश-भूषा, भाषा तथा जीवनपद्धति से लगाव और प्यार नहीं है, जिन्हें देश की मिट्टी, नदी-नालों, वन-पर्वतों तथा पूर्वजों में निजता की अनुभूति नहीं हैं उनसे देशप्रेम और राष्ट्रनिष्ठा की आशा करना आशा का उपहास करना है। जिन्हें *वन्दे मातरम्* गान तथा झण्डाभिवादन में तो बुतपरस्ती की बू आती है, किन्तु जो क़ब्रपरस्ती को बुतपरस्ती नहीं समझते उनमें देशभक्ति तथा राष्ट्रनिष्ठा कैसे स्थापित होगी, यह एक विकट समस्या है। अंगरेज़ी भाषा तथा वेश-भूषा की ऐंठ में जो अपने देशवासियों को हेयता के साथ *हिन्दीवाला* और *धोती-पायजामा-वाला* कहकर पुकारते हैं उन्हें कैसे देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा से अलंकृत किया जाये, यह एक पहेली है। करोड़ों हिन्दु जो पेट भरने और धन बटोरने के लिये रात-दिन भ्रष्टाचार और अनाचार में लथ-पथ हैं, उन्हें देशप्रेम तथा राष्ट्रनिष्ठा से कैसे दीक्षित किया जाये, यह गहन चिन्तन का विषय है। देश की जिन राजनीतिक पार्टियों का एकमात्र धन्धा वा लक्ष्य अशान्ति फैलाना, वोट बटोरना और शासन हथियाना है, उनके सभ्य-सभ्याओं को कैसे देश का दीवाना और राष्ट्र का पर्वाना बनाया जाये, यह एक कठोर प्रश्न है। और सर्वातिशय गर्हित प्रश्न तो यह है कि हिन्दुस्थान में रहकर जो यहां पाकिस्तान की हुकूमत क़ाइम करने के षड्यन्त्र रच रहे हैं उनके मानस को कैसे पलटा जाये।

जब मैं यह हिसाब लगाने लगता हूं कि मेरी मातृभूमि के करोड़ों पुत्र-पुत्रियों में से कितने हैं जिन्हें वास्तव में देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ कहा जा सकता है तो मेरी आंखों के सामने अंधेरा-सा छाने लगता है। तथापि समस्या का समाधान तो खोजना ही होगा।

: ७ :

हताश होने से काम न चलेगा। विश्व के इतिहास में ऐसे असंख्य प्रसंग

हैं जहां जातियों ने सब कुछ खोकर फिर सब कुछ प्राप्त किया है और विनाशों की भस्म पर स्वर्णिम निर्माण किये हैं। विश्वेतिहास के अध्यायों में ऐसा ही एक नया अध्याय हमें जटित करना है।

निश्चय ही, यह दोहराने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी, हिन्दुस्थान, हिन्दु—इस त्रित के आश्रय से हिन्दु जाति में देशभक्ति और राष्ट्रनिष्ठा की अविलम्ब स्थापना की जा सकती है। और यह प्रत्यक्ष है कि हिन्दु जाति के सुसंगठित होकर देशभक्त और राष्ट्रनिष्ठ बन जाने पर यह जाति अजेय और अदम्य बन जायेगी। यह स्पष्ट ही है कि हिन्दु जाति के अजेय और अदम्य बन जाने पर ही इस देश में निवास करने वाले हिन्दुरक्त मुसलमान तथा ईसाई हिन्दु जाति के तनू में उसी प्रकार विलीन होजायेंगे जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में विलीन होजाती हैं।

इतिहास के इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि महाभारत के बाद के गत पांच हज़ार वर्षों के इतिहास में 'दयानन्द महान् प्रथम व्यक्ति था जिसने इस देश में स्वराज्य की उद्घोषणा की थी और आर्यसमाज प्रथम संस्था थी जिसने समूचे हिन्दुस्थान में स्वतन्त्रता की भावना की संव्याप्ति की थी। यह भी एक ऐतिहासिक, अकाट्य सत्य है कि आर्यसमाज के नितान्त शिथिल होजाने पर ही ब्रह्मर्षि पं. मदनमोहन मालवीय तथा देवतास्वरूप भाई परमानन्द को हिन्दु-महासभा की स्थापना तथा प्रसाधना करनी पड़ी थी।

हिन्दु जाति को सुसंगठित करके राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरोने का सुकार्य देश की किसी राजनैतिक पार्टी द्वारा कदापि न किया जा सकेगा। यह कार्य तो हिन्दुओं की सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं द्वारा ही किया जायेगा। नवोदित *विश्व-हिन्दु-परिषद्* एक ऐसी संस्था है जिसमें हिन्दुओं के सभी वर्गों तथा सम्प्रदायों के व्यक्तियों का सहयोगात्मक समावेश है। सभी को उक्त परिषद् की शक्ति तथा आर्थिक स्थिति को सक्षम बनाने की दिशा में सक्रिय पग उठाने चाहियें।

हिन्दु राष्ट्रवाद की व्याप्ति के लिये हिन्दुसंगठन की दिशा में

व्यापक पग उठाना चाहिये। हिन्दुओं की समस्त धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं का सहकार अथवा सहचार इस सुसाधना का मूलाधार होगा। हिन्दुओं की किसी भी संस्था के स्वस्थ और निरापद कार्यक्रमों में सभी जातियों, वर्गों तथा मान्यताओं के हिन्दुओं को हृदय के सम्पूर्ण सौहार्द और मस्तिष्क के सम्पूर्ण औदार्य के साथ सम्मिलित होना चाहिये। संकीर्णता ने हमें विगठित और जीर्ण-शीर्ण कर दिया है।

दिल्ली के एक राममन्दिर में मेरा वेदोपदेश होना था। आर्यसमाज के कतिपय परिवार भी उसमें सम्मिलित हुये। वेदोपदेश के उपरान्त जब मैं पैदल अपने निवासस्थान को जारहा था तो एक आर्यसमाजी सभ्य मिले। 'आप मेरे वेदोपदेश में नहीं आये,' मेरे इस वाक्य के उत्तर में उन्होंने कहा, 'मैं मूर्तिपूजास्थलों में नहीं जाता हूं।'

'क्यों ?'

'मूर्तिपूजा हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है।'

'तो आप वहां आकर वेदोपदेश श्रवण करते। कोई आपसे मूर्तिपूजा करने को कहता तो आप प्रेमपूर्वक कह देते कि वैसा करना आपकी मान्यता के अनुकूल नहीं।'

'वहां मूर्तियां जो रखी रहती हैं।'

'तो क्या हुआ ? मूर्तिपूजा में आपत्ति सही। मूर्ति के अस्तित्व और अवलोकन में आपत्ति क्यों ? बुद्ध और गांधी की मिट्टी की मूर्तियां आपकी बैठक में भी सजी हुयी हैं। चांदनी चौक में स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति स्थापित होनेवाली है। उसके स्थापित होने पर क्या आप चांदनी चौक में जाना बन्द कर देंगे ? आर्यसमाजों में स्वामी दयानन्द के चित्र लगे होते हैं; आप वहां भी तो जाते हैं।'

'आप मूर्ति और चित्र को एक-सा मानते हैं ?'

'मानने का प्रश्न क्या ? मूर्ति पत्थर वा धातु की बनी है और भूमि पर रखी रहती है। चित्र वा तस्वीर काग़ज़ की बनी मूर्ति ही है जो भूमि के बजाय दीवार पर रखी रहती है।'

'स्वामी जी के चित्र की पूजा नहीं होती हैं। उसके अवलोकन से प्रेरणा मिलती है।'

'मन्दिर में स्थापित राम, कृष्ण की मूर्ति के अवलोकन से भी प्रेरणायें मिल सकती हैं। महापुरुष तो उन्हें आप मानते ही हैं।'

मैंने उन्हें समझाया, 'इस प्रकार की संकीर्णता से हिन्दु का जाति विराट् रूप खण्ड खण्ड होरहा है। सनातनधर्मियों और आर्यसमाजियों की विलगता से राष्ट्रीयता की अपार हानि होरही है। सनातनधर्मी कितने उदार हैं कि वे अपने मन्दिरों में आर्यसमाज के संन्यासियों और विद्वानों के उपदेश कराते हैं। आर्यसमाजियों को इतना उदार होना चाहिये कि वे मन्दिर में जाकर वेदोपदेश श्रवण करें।' भविष्य के लिये वे मान गये।

इस प्रकार की असंख्य संकीर्णतायें हैं जिनके कारण हमारी जाति के संगठन में दरारें पड़ी हुई हैं। क्रिश्चियन सम्प्रदाय के छहत्तर सम्प्रदायों में कभी परस्पर घोर विरोध था। वर्तमान पोप के पूर्ववर्ती पोप ने उन सभी सम्प्रदायों में ऐसा मेलमिलाप कराया कि वे सब मिलकर काम कर रहे हैं।

मैं स्वयं सदा से सभी धर्मस्थानों में वेदोपदेश करता रहा हूं। मण्डनात्मक ढंग से सर्वत्र वैदिक मन्तव्यों का खुलकर प्रचार करता हूं। पूर्वज हमारे सब समान हैं। सभी महापुरुषों के जीवनों के सुष्ठु प्रसंगों का मैं अपने वेदोपदेश में यथाप्रसंग वर्णन करता हूं। राम, कृष्ण, शंकर, नानक, दयानन्द प्रभृति हिन्दुमात्र के श्रद्धास्पद हैं। महापुरुषों की प्रशस्ति सभी को प्रिय लगती है। आलोचना भी करनी हो तो अतिशय आदर और शालीनता के साथ की जानी चाहिये। पिछले दिनों आर्यसमाज के एक जोशीले व्यक्ति ने कुछ महापुरुषों को सनातनधर्म के भगवान् कहकर उनकी अश्लील आलोचना की। बदले में सनातनधर्म के एक विद्वान् ने महर्षि दयानन्द पर वह लेखमाला प्रकाशित की कि जिस आर्यसमाजी ने भी उसे पढ़ा वही तिलमिला उठा। मैंने उस विद्वान् से सादर निवेदन

किया, 'एक ग़ैरज़िम्मेदार व्यक्ति के कृत्य पर आपको इस सीमा तक नहीं जाना चाहिये था।'

फ़र्रुखाबाद में, सनातनधर्म-सभा के तत्त्वावधान में, उन्हीं के सरस्वती-भवन में एक बार मेरी वेदोपदेशमाला चल रही थी। नित्य ही मेरे वेदोपदेश के उपरान्त 'सियावर रामचन्द्र की जय', 'उमापति महादेव की जय', 'पवनसुत हनुमान की जय', 'कृष्ण बलदेव की जय' बोली जाती थीं। मेरे लिये उन जयकारों में कोई आपत्तिवाली बात न थी क्योंकि राम, महादेव, हनुमान और कृष्ण हम सबके समान पूजास्पद हैं। तीसरे दिन अपने वेदोपदेश के मध्य मैंने कहा, 'आप लोग महर्षि दयानन्द की जय क्यों नहीं बोलते ? क्या दयानन्द ने हिन्दु जाति की कोई सेवा नहीं की ? अनेक असहमतियों के बावजूद आपको यह मानना चाहिये कि दयानन्द ने हिन्दु जाति के अस्तित्व की ही नहीं, उसकी सभ्यता और संस्कृति की भी रक्षा की है।' और उसी दिन से सनातनधर्म के महान् विद्वान्, प. जुगलकिशोर उपर्युक्त जयघोषों के साथ 'महर्षि दयानन्द की जय' का घोष भी लगवाते रहे। 'सनातनधर्मियों के श्रद्धापूरित हृदय बड़े उदार हैं,' मेरे इस कथन पर वे झूम-झूमकर दयानन्द की जयकार लगाने लगे।

: ८ :

हिन्दुओं की समाज-व्यवस्था सैकड़ों नहीं, हज़ारों बरस से नितान्त अस्वाभाविक और सर्वथा जटिल रहती चली आरही है। हिन्दु जाति के अस्तित्व और सर्वस्व की रक्षा के लिये उसे बहुत सरल और स्वाभाविक बनाना होगा। जो वर्ण और आश्रम हमारी समाज-व्यवस्था के महा-वरदान थे वे ही आज भयंकर अभिशाप सिद्ध होरहे हैं।

वैदिक वर्णव्यवस्था जितनी निरापद और स्वाभाविक है, स्मृतिकारों ने उसे उतना ही सापद और कृत्रिम बनाकर रख दिया। वेद में शूद्र शब्द का अर्थ अपठित, : मूर्ख और कदापि नहीं है, न ही वेद में द्विज शब्द का प्रयोग केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये हुआ हैं।

वेद ने तो स्वाय चारणाय, सबके लिये, मनुष्यमात्र के लिये द्विजत्व का अधिकार दिया है। माता के गर्भ से जन्म लेने पर प्रत्येक व्यक्ति एकज बनता है। वेदविद्या के गर्भ से जन्म लेकर विद्वान् बनने पर वह द्विज [द्वि-जन्मा] कहलाता है। वेद के अनुसार ब्राह्मण ज्ञानप्रदाता है, क्षत्रिय रक्षणप्रदाता है, वैश्य धनप्रदाता है, शूद्र वासोदा [वासप्रदाता] है। मानवसमाज के वास—निवास के लिये जो कुछ आवश्यक है उसके निर्माता का नाम शूद्र है। गृह, कोठी, बंगला, महल, भवन, पुल, सड़क, रेल, यान, हस्पताल, ऑफ़िस, छावनी, आदि का निर्माण करना शूद्र वर्ग का कार्य है। एंजिनियर, ड्राफ़्ट्समैन, आर्कीटेक्ट, कारीगर, मज़दूर सब शूद्र हैं और सम्पूज्य हैं। शूद्र ही श्री [शोभा] का सम्पादक है। शूद्र श्री का पुत्र है।

ब्राह्मण शर्मा है, क्षत्रिय वर्मा है, वैश्य श्रेष्ठी है और शूद्र श्री है। किन्तु श्री का पद इतना सुन्दर और शोभनीय है कि सभी वर्गों के देव और देवियां अपने आपको *श्री*, *श्रीमान्* और *श्रीमती* कहलाना पसन्द करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के दाहिने तलुए में पद्म और बायें तलुए में श्री होती है। पद्म और श्री के कारण ही पगों का स्पर्श और पूजन किया जाता है। मानवसमाज में शूद्र ही पगस्थानीय है, पद्म और श्री का अवतार है। शूद्र शब्द का अर्थ है श्रम करनेवाला। श्रम से ही पद्म और श्री पदों की प्रतिष्ठा है। *श्रमेण तपसा सृष्टा*। श्रमरूपी तप से ही रचना और निर्माण होता है। शूद्र समाज की श्री—शोभा है। वैश्य समाज का पूषा है। क्षत्रिय समाज का रक्षक है। ब्राह्मण समाज का प्रचेता है। चारों ही वर्ण समान सम्पूज्य और समादरणीय हैं। चारों ही वर्णों के कर्तव्यों के निर्वहन के लिये विद्या और वेद समान-रूपेण सहायक हैं। चारों ही वर्णों को द्विजत्व का अधिकार है।

वर्णव्यवस्था को उसके अपने प्राकृत रूप में प्रस्थापित करना ही होगा। अन्यथा हिन्दुसमाज के विगठित रूप को सुगठित न किया जा सकेगा। वर्ण मानवसमाज की एक स्वाभाविक व्यवस्था है। सभी

देशों में वर्णव्यवस्था अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। रूस जैसे अधार्मिक और नास्तिक देश में भी चारों वर्ण मौजूद हैं। शिक्षा जिनका व्यवसाय है वे ब्राह्मण हैं। रक्षा और व्यवस्था जिनका व्यवसाय है वे क्षत्रिय हैं। व्यापार जिनका व्यवसाय है वे वैश्य हैं। निर्माण और उत्पादन जिनका व्यवसाय है वे शूद्र हैं। पर कहलाते वहां सब *मिस्टर*—श्री और *मिसेज़*—श्रीमती हैं। आदर भी सबका समान है। वहां वर्णों में परस्पर रोटी, बेटी के मामलों में कोई रोक, संकोच वा प्रतिबन्ध नहीं है। एक भारत ही है जहां वर्णव्यवस्था अपने स्वाभाविक रूप में न होकर विकृत रूप में है। इस विकृति से ही हमारा देश विभिन्न भागों में विभक्त हुआ और उसी के परिणामस्वरूप करोड़ों हिन्दु विधर्मी बने और बन रहे हैं, देश खण्ड खण्ड हुआ और होरहा है। *हिन्दु जाति के संगठन तथा उत्थान के लिये यह परम आवश्यक है कि उसकी वर्णव्यवस्था अन्य देशों की तरह व्यवसायात्मक हो और चारों ही वर्णों की सामाजिक स्थिति समस्तर हो।*

आश्रमव्यवस्था इस देश की एक अपनी ही वस्तु है। इसका आधार श्रम और साधना है। *आश्रम* शब्द का अर्थ ही है घोर श्रम। ब्रह्मचर्याश्रम तथा गृहस्थाश्रम के द्वार सभी के लिये खुले हैं। किन्तु वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम केवल उन्हीं के लिये विहित होने चाहियें जो सात्त्विक, साधनाशील, परोपकारी तथा समाजसेवी हों। आश्रमव्यवस्था जब हमारे देश में अपने वास्तविक स्वरूप में थी तभी हम विश्व का आर्यकरण कर पाये थे और जब यह पुनः अपने स्वाभाविक रूप में स्थित होगी तभी हम फिर विश्व का आर्यकरण कर सकेंगे। आयु से आश्रम के रिवाज ने हिन्दु जाति और हिन्दु राष्ट्र का सर्वनाश कर दिया है। वानप्रस्थ तथा संन्यास—इन दो आश्रमों में केवल उन्हीं का प्रवेश होना चाहिये जो जौहर की भावना से भरपूर भरे हों। वानप्रस्थ की दीक्षा केवल उन्हीं स्वस्थ और सदाचारी व्यक्तियों को दी जाये जो दो समय के भोजन और दो वस्त्रों से अपनी गुज़र करके

निश्शुल्क विद्यादान तथा समाजसेवा में निरत रहें । संन्यास की दीक्षा भी केवल उन्हीं सक्षम और साधनाशील व्यक्तियों को दी जाये जिनकी साध हो वैदिक संस्कृति से दीक्षित करके विश्व का आर्यकरण करना । इन दो विरक्त आश्रमों की अन्ध परम्परा ने हिन्दु जाति की जो अपार क्षति की है उसके विचार से किसी भी विचारशील हिन्दु का शिर चकराने लगेगा ।

और यह भी ध्रुव सत्य है कि जब तक लाखों की सख्या में सच्चे वानप्रस्थी और सैकड़ों की संख्या में अच्छे संन्यासी इस जाति को उपलब्ध न होंगे तब तक हिन्दुसमाज का न वास्तविक उत्थान हो पायेगा, न हिन्दु राष्ट्र अजेय और अदम्य बन पायेगा । हिन्दु जाति में जितने भी स्वस्थ, स्वच्छ, सक्षम और साधनाशील देव-देवियां ऐसे हैं जो गृहस्थ की ज़िम्मेदारियों से मुक्त हैं वा मुक्त हो सकते हैं वे ईमान-दारी के साथ अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार वानप्रस्थ वा संन्यास की दीक्षा लें, कमर कस कर कार्यक्षेत्र में उतरें और वह करें जिसकी आज मातृभूमि पुकार कर रही है । मृत्यु सभी को एक दिन अपने परिवारों, परिजनों तथा परिग्रहों से पृथक् कर देगी । वे धन्य होंगे जो बिगड़ी को बनाने, स्वदेश तथा स्वराष्ट्र को सजाने और स्वधर्म को व्यापने के लिये स्वेच्छा से स्व सर्वस्व का त्याग कर साधना में जुट जायेंगे । देश और विश्व को आवश्यकता है उन तपोधन वानप्रस्थियों तथा संन्यासियों की जो उबलते हुये ज्वालामुखियों और उमड़ते हुये तूफ़ानों में जूझकर देश, जाति और धर्म की रक्षा तथा संव्याप्ति करें ।

: ६ :

किसी भी जाति के संगठन तथा संविकास के लिये भाषा तथा लिपि की समानता प्रत्यक्षतः परमावश्यक है, इस तथ्य को निश्चय ही भारत के इतिहास में सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने अनुभव किया था । जन्म से उनकी मातृभाषा गुजराती थी और संस्कृत उनकी व्यवहार की भाषा बन चुकी थी । ससमय उन्होंने अनुभव किया कि आर्यावर्त की अखण्डता

तथा आर्यों के सुसंगठन और संविकास के लिये आर्य-भाषा की संव्याप्ति अनिवार्यतः आवश्यक है। अपने गौरव-गुमानभरे हृदय से उन्होंने हिन्दुस्थान को आर्यावर्त, हिन्दु जाति को आर्य जाति, हिन्दु को आर्य और हिन्दी को आर्य-भाषा कहा और लिखा। अपने हृदय के सम्पूर्ण प्यार के साथ उन्होंने कहा और लिखा, 'एक दिन आयेगा जब आर्य-भाषा न केवल आर्यावर्त की, अपि तु विश्व की भाषा बनेगी।'

निस्सन्देह हिन्दी इतनी सरल, सरस, और इसकी लिपि इतनी स्वाभाविक है कि वह संसार की किसी भी भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक सुगमता के साथ विश्व की अन्तरराष्ट्रीय भाषा बन सकती है। समूचे भारत की कामचलाऊ भाषा तो वह सदियों से चली आ रही है। हमारे नेताओं ने अपराध कोटि की भूलें न की होतीं तो हिन्दी गत दो दशाब्दियों में समूचे देश की भाषा बन चुकी होती। १५ और १६ अगस्त, १९४७ की सन्धि-वेला में घायल स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुयी थी और अगली प्रातः से ही सारे देश में स्वतः ही हिन्दी सीखने की लहर दौड़ गयी, जिसका वेग अहिन्दी-भाषी राज्यों में हिन्दी-भाषी राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र था। वह लहर विशेषतः दक्षिण भारत में समान गति से निरन्तर गतिमान् रही। विधान-निर्मात्री-सभा में हमारे उन नेताओं ने, जो अंगरेज़ी में ही शासन का काम-काज चला सकते थे, जब पन्द्रह वर्ष की अवधि का अड़ंगा अटकाया, तो हिन्दी की प्रगति तथा व्याप्ति का मार्ग कुंठित होगया। आगे चलकर जब सतत घोषणायें की जाने लगीं कि अहिन्दी-भाषी राज्यों में से जब तक एक भी राज्य हिन्दी को अस्वीकार करता रहेगा तब तक अंगरेज़ी भारत की काम-काज की भाषा बनी रहेगी तो हवा का रुख ही बदल गया।

यह सन्तोष की बात है कि तमिलनाडु को छोड़कर अन्य सभी अहिन्दी-भाषी राज्यों में अब हिन्दी का विरोध लगभग समाप्त है और तमिलनाडु में भी अधिकांश लोग हिन्दी के विरोध को हानिकर समझकर अपने पुत्र-पुत्रियों को पर्याप्त संख्या में हिन्दी-माध्यम स्कूलों में

दाखिल करा रहे हैं। तमिलनाडु में एक वर्ग, जो डी. एम. के. के प्रभाव में है, 'Hindi never, English ever'—हिन्दी कभी नहीं, अंगरेज़ी हमेशा का नारा लगा रहा है तो दूसरा समझदार वर्ग 'Learn Hindi'—हिन्दी सीखो की सलाह दे रहा है। भविष्य के भीतर झांकने पर साफ़ दिखायी देता है कि आगामी दो दशाब्दियों में हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त कर लेगी। उसे सारे भारत की भाषा बनाना सरकार का नहीं, हिन्दी-साधकों का काम है।

भाषा की व्याप्ति आन्दोलनों से नहीं, आवश्यकता की अनुभूति तथा योजनाबद्ध प्रयोग से होती है। हिन्दुस्थान में अंगरेज़ी की व्याप्ति के ये ही दो मुख्य कारण थे। सारे देश पर अंगरेज़ों का राज स्थापित होने पर यह अनुभव किया जाने लगा था कि प्रतिष्ठित और उच्च पदों की प्राप्ति अंगरेज़ी पढ़कर ही हो सकती थी। दूसरी ओर अंगरेज़ शासकों ने अंगरेज़ी के प्रयोग को बढ़ावा देते हुये योजनाबद्ध रीति से अंगरेज़ी की पढ़ाई की सुव्यवस्था की थी। क्रिश्चियन मिशनरियों ने उसकी व्याप्ति को अपने मिशन-कार्य का प्रमुख अंग बनाया था। आज भी वही होरहा है। स्वयं हिन्दुस्थानी नेता जनता को यह अनुभव कराने में संलग्न हैं कि अंगरेज़ी के बिना देश ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल में पिछड़ जायेगा। क्रिश्चियन शिक्षण-संस्थाओं से भी बढ़-चढ़कर अंगरेज़ी और अंगरेज़ियत के मानस पुत्र-पुत्री पब्लिक तथा मॉडर्न स्कूल खोल-खोलकर अंगरेज़ी पढ़ा रहे हैं और अंगरेजी के प्रयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। उर्दू का भी यही इतिहास है। मुस्लिम शासन में प्रतिष्ठित तथा उच्च पदों की उपलब्धि उर्दू और फ़ार्सी भाषाओं के द्वारा होती थी। शासन तथा मौलवियों द्वारा उनके पठन-पाठन तथा प्रयोग की सुव्यवस्था की जाती थी।

हिन्दी तथा संस्कृत के साधकों की इस सनिष्ठ साधना की प्रशंसा की ही जायेगी कि दो महाबली विदेशी शासनों की निष्ठुर चोटों से वे उन्हें जीवित रख पाये। यह निश्चित है कि आर्य-भाषा तथा देववाणी के उपासक त्रिभाषा फ़ॉर्मूला की चोट से भी इन दोनों संदिग्ध भाषाओं

की रक्षा तथा वृद्धि करने में सफल होंगे । प्रत्यक्षतः ही संस्कृत के बिना हिन्दी का विकास तथा सवर्धन असम्भव है तो हिन्दी के बिना इस देश में संस्कृत के भविष्य को उज्ज्वल न बनाया जा सकेगा। दोनों ही की व्याप्ति के लिये हमें जनता को उनकी आवश्यकता की अनुभूति करानी होगी और उनके भारतव्यापी प्रयोग की निरापद विधि बतानी होगी।

:१०:

अभी २३ फ़रवरी, १९६९ को अपने ८२वें जन्मदिवस के उपलक्ष में आयोजित समारोह पर श्री के. एम. मुंशी ने कहा है, '*भारतीय विद्या-भवन* की स्थापना और विकास समस्त भारत के मित्रों की आर्थिक सहायता से हुआ है। एक बीभत्स आपत्ति सामने है। गुजरात के महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम गुजराती होने जारहा है। महाराष्ट्र के महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मराठी होगा। तमिलनाडु में तमिल, और उत्तर प्रदेश में शिक्षा का माध्यम हिन्दी बन चुकी है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन अपनी परीक्षाओं के लिये क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की स्वीकृति दे चुका है। यदि अंगरेज़ी का स्थान हिन्दी, आदि क्षेत्रीय भाषायें ले लेती हैं तो भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों का पारस्परिक सम्पर्क समाप्त हो जायेगा। तब यहां के नागरिक भारतीय न रहकर आन्ध्री, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, महाराष्ट्रियन, तामिल, इत्यादि बन जायेंगे।' यह बौद्धिक और मानसिक दासता अवलोकनीय तो है ही, दयनीय भी है। कितने गहरे और अमिट होते हैं दासता के संस्कार, यह उसका एक मुंह-बोलता उदाहरण है। मैं वयोवृद्ध और समादरणीय श्री मुंशी से समुचित आदर के साथ पूछना चाहता हूँ कि अंगरेज़ों के शासन-काल में, जब समूचे भारत में अंगरेजी का बोल-बाला था, क्या तब बंगाली बंगाली नहीं थे, गुजराती गुजराती नहीं थे, पंजाबी पंजाबी नहीं थे, उड़िया उड़िया नहीं थे, महाराष्ट्रियन महाराष्ट्रियन नहीं थे, मद्रासी मद्रासी नहीं थे ?

और एक दूसरा इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जो मैं श्री मुंशी

से पूछना चाहूंगा यह है कि क्या अंगरेजी की अपेक्षा हिन्दी भारत की
अधिक देशव्यापी सम्पर्क भाषा नहीं है, क्या अंगरेज़ी की अपेक्षा हिन्दी को कहीं अधिक आसानी से भारत के विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा नहीं बनाया जा सकता है, क्या लाख कोशिशों के बावजूद अंगरेज़ी को भारत में सदा के लिए भारतीय भाषाओं के शिर चढ़ा रखा जा सकेगा? *भारतीय विद्या-भवन* के विकास का आधार यदि विदेशी भाषा है तो उसे *भारतीय* कहना भारतीयता का अपमान है। किसी भी समझदार व्यक्ति के विचार से भारतीयता का सुदृढ़ आधार हिन्दी और संस्कृत ही हो सकती है। अनेकभाषाभाषी होते हुये भी यदि केन्या की राष्ट्रभाषा *सुहाली* हो सकती है तो हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा क्यों नहीं बन सकती है? लुत्फ़ यह है कि स्वराज्य-प्राप्ति के छह घण्टे बाद ही *सुहाली* केन्या की राष्ट्रभाषा बन गयी, जब कि भारत में स्वराज्य-प्राप्ति के बाईस बरस गुज़र जाने पर भी हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है। दोष हालात का नहीं है, मनोवृत्ति का है।

यहां हिन्दी के साधकों के लिये एक साधनीय साधना है। किसी भी प्रदेश की साधारण जनता हिन्दी के विरोध में नहीं है। हिन्दी का विरोध और अंगरेज़ी का पोष केवल उन व्यक्तियों की मायावी लीला है, अंगरेज़ी के माध्यम से जिन्होंने भारत पर अपना वर्चस्व-स्थापन किया हुआ है और जिनकी संख्या भारत की जनसंख्या का एक प्रतिशत भी नहीं है। अंगरेज़ी का यह वर्चस्व समाप्त किया ही जाना चाहिये और उसकी समाप्ति के लिये यह आवश्यक है कि प्रचार तथा प्रेरणा द्वारा अंगरेजी के मानस पुत्र-पुत्रियों में क्षेत्रीय स्वार्थ के स्थान पर राष्ट्रीय हित की भावना उत्पन्न की जाये। श्री अन्नादुरै के देहावसान का मुझे भी उतना ही क़लक़ है जितना उनके किसी प्रिय से प्रिय जन को होगा। उनका अपना एक प्रशंसनीय व्यक्तित्व था। उसके बावजूद उनके हिन्दी-विरोध और आंग्ल-पोष का एकमात्र कारण

उनका यह विचार था कि अंगरेज़ी का स्थान हिन्दी को दिये जाने पर केन्द्रीय नौकरियों में मद्रासियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होजायेगी, जब कि वास्तविकता यह थी कि असंख्य मद्रासियों का हिन्दी का स्तर उत्तर-भारतीयों की अपेक्षा पर्याप्त उच्चतर है।

दक्षिण भारत के प्रदेशों अथवा राज्यों की जनता को यह तथ्य हृदयंगम कराना अति-आवश्यक है कि अंगरेज़ी की अपेक्षा हिन्दी में दक्षता प्राप्त करना अतिशय सरल है, कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से प्रत्येक पार्श्व में उन्हें भारतव्यापी क्षेत्रों की उपलब्धि होगी, कि राष्ट्रसम्मान की दृष्टि से अपने देश की राष्ट्रभाषा पर विदेशी भाषा को तरजीह देना आत्महेयता का द्योतक है, कि किसी भी प्रदेश की समृद्धि केन्द्रीय सरकार की नौकरियों से नहीं, उद्योग, कृषि तथा कला-कौशल की वृद्धि से होगी, कि जो प्रदेश राष्ट्रभाषा हिन्दी के पठन-पाठन में जितना विलम्ब करेगा वह अपनी सर्वांगीण प्रगति में उतना ही पिछड़ा रहेगा।

प्रदेश-प्रदेश में राष्ट्रभाषा की व्याप्ति की आवश्यकता की अनुभूति कराने की दिशा में हिन्दी के साधकों ने अभी कुछ भी नहीं किया है। उन्होंने अपनी जितनी शक्ति हिन्दी-आन्दोलनों में व्यय की है उतनी शक्ति इस कार्य में लगायी होती तो परिणाम कहीं अधिक लाभप्रद हुआ होता। आन्दोलन वे ही सफल और सार्थक होते हैं जो रचनात्मक और आवश्यकता की अनुभूति करानेवाले होते हैं। भाषा की एकता के बिना राष्ट्र की भावात्मक एकता कदापि सम्पादन न की जा सकेगी। न ही भाषा की एकता के बिना देशव्यापी हिन्दुसंगठन सुदृढ़ हो पायेगा। और सुदृढ़ हिन्दुसंगठन के बिना हिन्दुस्थान अनन्त काल तक सबल और सुरक्षित न हो पायेगा।

: ११ :

हिन्दुसंगठन के लिये हिन्दुमात्र की एक समान भाषा होना नितान्त आवश्यक है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। इसके लिये जहां

वैधानिक आन्दोलन तथा शिष्ट आलोचना आवश्यक है वहां देशव्यापी

और विश्वव्यापी साधना भी आवश्यक है।

हिन्दी-भक्त दो प्रकार के हैं—एक वे जो अपना सब कामकाज अंगरेज़ी तथा उर्दू में करते हैं, परन्तु हिन्दी के पक्ष में प्रचुर आन्दोलन करते हैं। दूसरे वे जो हिन्दी के लिये किये जानेवाले आन्दोलनों से कोई वास्ता नहीं रखते हैं, किन्तु अपना सब कार्य, यथासम्भव, हिन्दी में ही करते हैं। पूर्व-कोटि के लोग जहां धन्यवाद के पात्र हैं वहां दूसरी कोटि के लोग बधाई के पात्र हैं।

भाषा की व्याप्ति आन्दोलनों, आलोचनाओं और प्रशस्तियों से उतनी नहीं होती है जितनी व्यवहार और प्रयोग से होती है। हिन्दी की व्याप्ति की दिशा में प्रशस्ततम साधना यह होगी कि हिन्दीज्ञ बोलने तथा लिखने में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करें। हमारे देश में अभी पांच प्रदेश ऐसे हैं जहां पता हिन्दी में लिखा होने पर पत्र या तो देर से पहुंचता है या खत्ते में डाल दिया जाता है। वहां के लिये पता भले ही अंगरेज़ी में लिख दिया जाये, पर पत्र हिन्दी में ही लिखा जाना चाहिये। विदेशों में मेरे अनेक प्रेमी ऐसे हैं जो हिन्दी पढ़ सकते हैं मगर लिख नहीं सकते। वे मुझे अंगरेज़ी में पत्र लिखते हैं, पर मैं उनके पत्रों का उत्तर सदा हिन्दी में देता हूँ। परिणाम यह है कि उनमें से कितने ही अब मुझे हिन्दी में पत्र लिखने लगे हैं।

देश-विदेशों में बहुत व्यक्ति हैं जो हिन्दी में बात समझ लेते हैं, परन्तु वे स्वयं बोलते और लिखते अंगरेजी हैं। आप अपनी ओर से उनसे हिन्दी ही बोलिये। अभिवादन और धन्यवाद भी हिन्दी में ही कीजिये। निमन्त्रण तथा शुभकामना के पत्र हिन्दी में ही प्रेषिये।

मैंने अभी एक बार भी सिनेमा-हॉल वा सिनेमा नहीं देखा है। उस दिन मुझे बड़ी प्रसन्नता हुयी जब मुझे यह बताया गया कि हिन्दी-फिल्मों द्वारा हिन्दी का जितना अन्तरप्रादेशिक तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रचार हुआ है उतना अन्य किसी साधन से नहीं हुआ है। यह सुनकर मैंने हृदय से

हिन्दी-फ़िल्म-व्यवसाय का धन्यवाद किया।

अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी-भाषी संस्थायें तथा व्यक्ति हिन्दी की निश्शुल्क रात्रिकक्षायें चलायें और वहां की जनता को उनकी मातृभाषा के आश्रय से हिन्दी सिखायें।

हिन्दी-भाषी प्रदेशों में भी अभी तक हिन्दी के दैनिकों की अपेक्षा अंगरेज़ी के दैनिकों का प्रकाशन कहीं अधिक बड़े आकार और कहीं अधिक संख्या में हो रहा है। हिन्दी के दैनिक तभी पनप पायेंगे जब जनता के मानस में इस अशोभनीय स्थिति के लिये आत्मग्लानि उत्पन्न होगी। सम्बन्धित संस्थाओं तथा संस्थानों को हिन्दी के दैनिकों की उन्नति तथा व्याप्ति के लिये भगीरथ प्रयत्न करना होगा।

हिन्दी की व्याप्ति की दिशा में सर्वोपरि साधना है हिन्दी की पाचनशक्ति को बढ़ाना। न केवल अंगरेज़ी के सर्वप्रयुक्त शब्दों को, अपि तु भारत की सभी भाषाओं के अधिक से अधिक शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों को हिन्दी में रूपान्तरित करना चाहिये। एक ओर जहां संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हिन्दी-साहित्य के स्तर को ऊंचा कर कर रही हो वहां दूसरी ओर सर्वभाषावाङ्मयपूरित हिन्दी सर्वजनसुलभ भाषा बन रही हो।

विश्व की समृद्ध, असमृद्ध, सभी भाषाओं की मौलिक तथा विशिष्ट रचनाओं का जहां हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित किया जाये वहां विश्व की सभी भाषाओं की निज छटाछवियों, साहित्य-विधियों तथा रचना-शैलियों को हिन्दी में संजोया जाये। दीर्घद्रष्टा दयानन्द के शब्दों में वह दिन शीघ्र लाया जाना चाहिये जब आर्य-भाषा [हिन्दी] न केवल समस्त आर्यावर्त में, अपि तु सम्पूर्ण भूमण्डल पर प्रचलित होरही हो।

: १२ :

अस्पृश्यता भी हिन्दुसंगठन में एक बहुत गहरी और चौड़ी खाई है। अस्पृश्यता ने आज दो विवाद धारण किये हुए हैं—एक शास्त्रीय अस्पृश्यता और दूसरी व्यावहारिक अस्पृश्यता। शास्त्रीय अस्पृश्यता का

नारा हाल ही में पुरी के शंकराचार्य, श्री निरंजनदेव ने बुलन्द किया है। उनकी मान्यता है कि हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत होने के अतिरिक्त हिन्दु धर्म का अंग भी है। उनकी यह मान्यता ऐसी मान्यता है जिसका अनुमोदन न कोई विद्वान् करेगा, न अविद्वान्। जो शास्त्र मानवसमाज में अस्पृश्यता को विहित ठहराये वह शास्त्र शास्त्र नहीं। ऐसे शास्त्र को जितना शीघ्र जलाकर राख कर दिया जाये उतना ही हितकर होगा। सन्तोष की बात यह है कि किसी भी वेद-शास्त्र में अस्पृश्यता को विहित नहीं ठहराया गया है।

रही अस्पृश्यता के हिन्दु धर्म का अंग होने की बात। यह शब्दावली ही मूर्खतापूर्ण है। हिन्दु धर्म नहीं है, जाति है। हिन्दु जाति में अनेक धर्म [सम्प्रदाय] हैं। पर हिन्दु नाम का कोई धर्म है, ऐसा मानना और कहना पागलपन का नहीं तो अनभिज्ञता का लक्षण अवश्य है। जाति और धर्म में अन्तर होता है। जाति और धर्म एक नहीं हो सकते। जर्मनी में जाकर कोई 'जर्मन धर्म' शब्दों का प्रयोग करे तो वे लोग उसे समझायेंगे, 'भाई, जर्मन हमारी जाति है, धर्म नहीं। हम जातीयता से जर्मन हैं और धर्म से क्रिश्चियन।' हिन्दु एक जाति है। हिन्दु जाति में धर्म से कोई सिख है, कोई राधास्वामी है, कोई सनातनधर्मी है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है। प्रत्यक्षतः, हिन्दु जाति का धर्म हिन्दु बताना और हिन्दु धर्म में अस्पृश्यता को विहित ठहराना एक अच्छा खासा मज़ाक़ है।

इस सन्दर्भ में शंकराचार्य-संस्था की कुछ खुली चर्चा कर देना भी यहां अप्रासंगिक न होगा क्योंकि यह संस्था भी हिन्दुसंगठन के मार्ग की एक विकट बाधा है। आदि शंकराचार्य एक था और जीते जी वह एक ही रहा। फिर उसके जा-नशीन अनेक शंकराचार्य कैसे? आदि शंकराचार्य ने केवल चार शंकर-मठ स्थापित किये थे। शेष जितने शंकर-मठ हैं वे बाद में स्थापित किये गये हैं। प्रत्येक शंकर-मठ में एक एक शंकराचार्य है और उनमें परस्पर कोई तालमेल नहीं है। एक ही

विषय में एक शंकराचार्य कुछ व्यवस्था देता है तो दूसरा कुछ और, और तीसरा कुछ और।

आदि शंकराचार्य आदि से अन्त तक विशाल भारत में अनवरत पैदल ही घूमा। उसने अपने सारे जीवन में कभी एक बार भी किसी प्रकार की सवारी का उपयोग नहीं किया। उस आदि शंकराचार्य के ये नामलेवा, नामधारी शंकराचार्य भी आदि शंकराचार्य का अनुकरण करते हुये सारे भारत में और विदेशों में क्यों नहीं पैदल घूमते हैं? आदि शंकराचार्य ने करोड़ों अवैदिकों को वैदिक बनाकर भारत में धार्मिक क्रान्ति की थी। ये शंकराचार्य इस दिशा में कोई काम क्यों नहीं करते हैं? आदि शंकराचार्य ने संन्यास-मर्यादाओं का पालन करते हुए किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास न कर सतत देशाटन किया। उसके स्थानापन्न ये शंकराचार्य अपने अपने मठ में स्थायी रूप से क्यों रहते हैं? इन्हें तो निरन्तर धर्मप्रचार-यात्रायें करते रहना चाहिये।

हिन्दुसमाज के प्रमुखों से मैं निवेदन करूंगा कि वे समस्त शंकर-मठों को एक सूत्र में सूत्रित करके सारे शंकराचार्यों को परस्पर एकजुष्ट करें और उन्हें आदि शंकराचार्य के आचार का अनुकरण करने को बाध्य करें। शंकर-मठों में हिन्दु जाति की करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति सर्वथा निष्क्रिय पड़ी है। उसका हिन्दुसमाज की सुसेवा के लिये सदुपयोग होना चाहिये। आन्दोलन और राजनीति से बहुत ऊपर उठकर उन्हें भारत में फैले विविध सम्प्रदायों को वैदिक रूप से रूपित करना चाहिये। अस्तु।

हिन्दुतनू में व्यापी, व्यावहारिक अस्पृश्यता उतनी भयानक नहीं जितना उसे तूल दिया जा रहा है। भारत में प्रचलित, आधुनिक, अनैतिक राजनीति ने उसे हौआ बना दिया है। बात सीधी-सादी है और उसका हल भी बहुत सरल है, बशर्ते कि मूल समस्या राजनीतिक पार्टियों और नेताओं का चुनाव-स्टंट न बने।

: १३ :

हिन्दुतनू में व्यापी व्यावहारिक अस्पृश्यता वैसी ही है जैसी संसार में

अन्यत्र है। स्वच्छ व्यक्तियों में अस्वच्छ व्यक्ति सर्वत्र अस्पृश्य होते हैं। भारत में से अस्पृश्यता के निवारण के लिये न किसी आन्दोलन की आवश्यकता है, न सरकारी क़ानूनों की। इस समस्या के समाधान के लिये एकमात्र आवश्यकता है अस्पृश्य बने हुये वर्गों के रहन-सहन को स्वच्छ और सुन्दर करके उन्हें स्पृश्य बनाने की।

सावरमती-आश्रम में हरिजनों को स्वच्छता का इतना सुन्दर प्रशिक्षण दिया जाता था कि वहां हरिजन वालक-वालिका तथा नर-नारी सवर्णों से भिन्न पहिचाने नहीं जाते थे। उनके शरीर, वस्त्र तथा कुटीर सवर्णों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वच्छ रहते थे। सवर्णों को उनकी कुटीरों में बैठना-उठना प्रिय और रुचिकर लगता था।

हिन्दुसमाज की अनेक संस्थायें अस्पृश्यों की हितैषिणी होने का दम भरती हैं। किन्तु उनमें से वह कौन-सी संस्था है जो हरिजन-बस्तियों में जाकर हरिजनों को अपनी कुटीरें स्वच्छ और शोभनीय रखने की शिक्षा देती है? इन पंक्तियों को लिखते हुये मेरी लेखनी रो रही है और मेरा मानस अकुला रहा है। असली वात तो यह है कि रहन-सहन की दृष्टि से अधिकांश सवर्ण भी अस्पृश्यों की सी ही स्थिति में हैं। गन्दे घर, गन्दी गलियां, गन्दे वस्त्र, गन्दा वातावरण—यही अस्पृश्यता का रूप है।

मैं सनातन धर्म, आर्यसमाज, राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ, आर्य-युवक-परिषद् तथा आर्यवीरदल से अनुरोध करता हूं और साथ ही सरकारी ग्राम-सुधारक तथा नगरशोधक विभागों से, अपि च स्वयं सरकारों से निवेदन करता हूं कि वे हरिजन अस्पृश्यों तथा सवर्ण अस्पृश्यों की वस्तियों, गलियों तथा गृहों को स्वच्छ और आकर्षक बनाने की गुरुतम साध में अपने धन, जन और समय का सदुपयोग करें। एक समय था जब यूरोप के देशों में भारत की अपेक्षा कहीं अधिक अस्पृश्यता का बोल-बाला था। जब से वहां सम्पूर्ण जनता का रहन-सहन समानरूपेण स्वच्छ और उच्च हुआ है तब से वहां अस्पृश्यता का न नाम है,

न निशान । भारत में भी वैसा ही करना होगा ।

हिन्दु जाति की उपर्युक्त संस्थायें पर्याप्त सबल है। मिशनरी लाइन पर प्रशिक्षण-प्राप्त, उनके मिशनरी व्रती बनकर अस्पृश्यों के रहन-सहन को स्वच्छ और शोभनीय बनाने में जुट जायें तो कुछ ही वर्षों में भारत से अस्पृश्यता का नामो निशान मिटाया जा सकता है।

हिन्दु शिक्षण-संस्थाओं के हज़ारों-लाखों अध्यापक-अध्यापिकायें तथा विद्यार्थी दीर्घ अवकाशों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सुपर्याप्त कार्य कर सकते हैं। लोक-सभा, राज्य-सभा तथा विधान-सभाओं के सभ्य-सभ्या भी सभाओं के अवकाश के दिनों में योजनाबद्ध रीति से अस्पृश्यता-निवारण के सुकार्य में जुट सकते हैं।

एक और दृश्य है जिसे देख-देखकर ज्ञानी जन खून के आंसू बहाया करते हैं। लाखों नहीं, करोड़ों हिन्दु अखण्ड कीर्तनों में अपना अमित धन, समय और शक्ति का व्यय करते हैं। इन कीर्तनों के विषय में एक बार वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर भट्ट सातवलेकर ने लिखा था, 'कीर्तनों की यह बाढ़ सर्वथा अनुत्पादक है। यदि इतने ये कीर्तनकार अस्पृश्यों को स्पृश्य बनाने में अपने आपको लगादें तो वह महती उत्पादक भक्ति होगी। ऐसा किया जाये तो वे करोड़ों आदि-वासियों तथा अस्पृश्यों को विधर्मी होने से बचा सकेंगे और उन्हें राम तथा कृष्ण के भक्त बनाये रख सकेंगे।'

समाजशास्त्रियों और स्मृतिकारों ने हिन्दुसमाज की जो क्षतियां की हैं उनकी भरपाई की दिशा में भी कुछ किया जाना चाहिये। विशेषकर सवर्णों में जो यह भावना घर कर गयी है कि संस्कृत का हर वाक्य और हर श्लोक परम प्रमाण है, अस्पृश्यतानिवारण की दिशा में एक बहुत बड़ी बाधा है। संस्कृत-साहित्य में सब कुछ आर्ष और मानवीय ही नहीं है, उसमें बहुत कुछ अनार्ष, अश्लील और अमानवीय भी है। प्रमाण माने जानेवाले, संस्कृत के सभी ग्रन्थों को अस्पृश्यता-निवारण की दृष्टि से सद्यः शोधने की अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा

किये विना रूढिप्रिय हिन्दु जाति के मस्तिष्क की सफल चिकित्सा कर सकना सर्वथा असम्भव होगा। किसी भी जाति के मस्तिष्क की चिकित्सा उसके अन्य समस्त रोगों के उन्मूलन के लिये प्रथम आवश्यकता है।

: १४ :

अस्पृश्यता अपने आपमें कोई साकार—मूर्त वस्तु नहीं है। अस्वच्छ और घिनौना रहन-सहन ही अस्पृश्यता का जनक है। उच्चताभिमानी ब्राह्मण भी जब शौचालय में मल-मूत्र का त्याग करने के बाद आवदस्त लेकर बाहर निकलता है तो वह अपने हाथों को अस्पृश्य समझता है। और जब वह मिट्टी वा साबुन मलकर अपने हाथों को स्वच्छ कर लेता है तब उसके हाथ फिर स्पृश्य बन जाते हैं।

अस्पृश्यतानिवारण का एकमात्र हल है अस्पृश्यों के रहन-सहन को स्वच्छ और सुन्दर बनाना। ऐसा होजाने पर अस्पृश्यता इस देश से ऐसे विदा होजायेगी, जैसे वह इस देश में कभी थी ही नहीं। यह कार्य हमें केवल हिन्दु अस्पृश्यों के लिये नहीं, अहिन्दु अस्पृश्यों के लिये भी करना है। मुसल्मान और ईसाई इस देश में हिन्दुओं के लिये इसी कारण अस्पृश्य बने रहे कि उनका रहन-सहन और उनके घरों का वातावरण सवर्णों के लिये अस्वच्छ था। यह एक घोर असत्य है कि हिन्दु सवर्णों ने विदेशी धर्मों का अवलम्बन करने के कारण मुसल्मानों और ईसाइयों को अस्पृश्य समझा। कारण अस्वच्छता अथवा अशुचिता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था।

हिन्दुमात्र को और, साथ ही, समस्त हिन्दु-संस्थाओं को योजनाबद्ध रीति से ऐसी संसाधना करनी चाहिये कि सम्पूर्ण हिन्दु जाति के रहन-सहन की स्थिति समान अथवा समस्तर होजाये।

भारत के खाद्य-मन्त्री,* माननीय श्री जगजीवनराम ने शंकराचार्य, श्री निरंजनदेव के एक वक्तव्य पर क्षुब्ध होकर वह बात कह डाली जो कहनी नहीं चाहिये थी। राजनीति ने राजनीतिज्ञों को सर्वथा नीतिशून्य बना

*तत्कालीन।

दिया है। अन्यथा किसी भी सभा वा समाज में किसी गन्दे व्यक्ति को श्री जगजीवनराम के पास बिठा दिया जाये तो वे चाहे कहें कुछ नहीं, पर अपने मन में वे खीझेंगे अवश्य। यदि उन्हें ऐसी बस्ती में लेजाया जाये जहां घर घर और गली गली में अस्वच्छ और गन्दा वातावरण है तो, मेरा विश्वास है, वे वहां न भोजन करेंगे न निवास करेंगे; शीघ्राति-शीघ्र वे वहां से विदा होना चाहेंगे।

हमारे देश में कितने ही जाति-पांतितोड़क मण्डल बने, कितने ही अन्तर्जातीय विवाह-संस्थान स्थापित हुये। सभी विना खिले मुर्झा गये। मुर्झाने का कारण यही था कि सबने डालियों और पत्तों पर पानी छिड़का, मूल को नहीं सींचा। यूरोप में अस्पृश्यता के अभाव का एक-मात्र कारण जनता के रहन-सहन का सम स्तर होना है। कभी रूस में संसार के किसी भी देश की अपेक्षा अस्पृश्यता का अभिशाप कहीं अधिक था। रहन-सहन की समस्तरता ने समूचे रूस में से अस्पृश्यता का निर्मूलन कर दिया है। आज भी संसार में जहां जहां रहन-सहन के स्तर में ज़मीन-आसमान का अन्तर है वहीं वहीं अस्पृश्यता का अभिशाप विद्यमान है। सम्पूर्ण हिन्दु जाति में रहन-सहन का सम स्तर होजाने पर जाति-पांति अनायास ही सदा के लिये ग़ाइब होजायेगी और रोटी-बेटी के सारे भेदभाव समाप्त होजायेंगे। तब न केवल हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह सामान्य होजायेंगे, अपि तु हिन्दु जाति के युवक अहिन्दु कन्याओं का सहजतया वरण करेंगे। तब बिना शुद्धि-आन्दोलन के ही इस देश के समस्त मुस्लिम और क्रिश्चियन परिवार हिन्दु-तनू में ऐसे विलीन होंगे जैसे नदियां सागर में विलीन होती हैं। श्री छागला के शब्दों में हिन्दुस्थान के मुसलमान और ईसाई हैं तो हिन्दु-महासागर के रक्तांश ही। अस्पृश्यता की बाधा समाप्त होते ही रक्त ज़ोर मारेगा और वे पुनः अपने मूल-सागर में प्रविष्ट होंगे।

जो व्यक्ति कान में तेल और आंख में सुफ़ेदा डालकर सोता है उसे न सुनाई देता है, न दिखायी देता है। हिन्दु जाति और उसके नेता कान

में तेल और आंख में सफेदा डालकर पर्याप्त सो लिये हैं। अब समय है कि वे चेतें, कान खोलकर सुनें, आंख खोलकर देखें और वह करें जो करना चाहिये। अन्यथा अस्तित्व के साथ सर्वस्व नष्ट होजायेगा।

: १५ :

यहां संक्षेप में कतिपय अस्पृश्यतानिवारण की विधियों का संकेत किया जाता है।

१) गान्धी जी ने एक सजीव उदाहरण पेश किया था। एक बार वे दिल्ली की एक हरिजन-बस्ती में आकर ठहरे। क्योंकि गान्धी जी से मिलने वहां बड़े से बड़े व्यक्तियों को आना था, दिल्ली-नगरनिगम उस बस्ती को पूर्णतया स्वच्छ रखने लगा, आनन-फ़ानन में उस बस्ती को जानेवाली और उसके भीतर की रेतीली सड़कों को पक्का कर दिया गया। बस्ती के निवासी भी उन दिनों बहुत स्वच्छ रहने लगे। राष्ट्र के वर्तमान बड़े बड़े नेता यदि गान्धी जी के उस पग का अनुसरण करने लगें तो बड़ा काम होजाये।

हमारे स्मृतिकारों ने एक बड़ी भयंकर भूल यह की कि असंस्कृत और अस्वच्छ वर्गों के लिये संस्कृत और स्वच्छ वर्गों की बस्तियों से दूर, पृथक् बस्तियां बसाने का विधान किया। उसी का यह परिणाम है कि हमारे इस, कभी के विश्वशिरोमणि राष्ट्र में सर्वत्र, सब ओर, अस्पृश्यों की गन्दी और घिनौनी, पृथक् बस्तियां दिखायी पड़ती हैं। वह वैधानिक कृत्य वैसा ही था जैसा दक्षिण अफ्रीका में गोरी जातियों ने किया है।

२) साधु-महात्मा अपने आश्रम हरद्वार, प्रयाग, आदि तीर्थ-स्थानों में न बनाकर हरिजन-बस्तियों में बनायें। वे उन बस्तियों के निवासियों को अपने अपने आश्रम के सत्संगों तथा आयोजनों में सम्मिलित करायें, उन्हें स्वच्छ रहन-सहन सिखायें, उनके बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करें, सहभोजों में उनके साथ भोजन करें, उन्हें धर्म की दीक्षा दें, उनके मलिन व्यसन और खान-पान को छुड़ाकर उन्हें सात्त्विक आहार की ओर प्रवृत्त करें। आश्रमों के साधक-साधिका श्रमदान की योजनाओं द्वारा हरिजन-बस्तियों

की तथा उन बस्तियों में निवास करनेवालों के गृहों की सफ़ाई की व्यवस्था करें।

३) हिन्दुओं की धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाएँ अपने मोहल्ला-प्रचार के आयोजनों में हरिजन-वस्तियों को सम्मिलित करें। अधिवेशनों की व्यवस्था बस्ती के निवासी करें और प्रचार-कार्य संस्थाओं की ओर से हो।

४) हरिजन-वस्तियों में धनाढ्य पुरुषों की ओर से ऐसी प्रातः- अथवा रात्रि-पाठशालायें खोली जायें जिनमें वहां के बालक-बालिकाओं तथा प्रौढ़ों को हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ाने के अतिरिक्त वेदानुशीलन भी कराया जाये। इस कार्य के लिये चारों वेदों में से व्यावहारिक जीवन से संबंध रखनेवाले तथा कर्मकाण्ड में काम आनेवाले सरल सरल मन्त्र छांट लिये जायें। सरल हिन्दी में उनका अर्थ और तात्पर्य पढ़ाया-समझाया जाये। इस कार्य को आर्यसमाज ही कर सकेगा। सनातनधर्म की वर्तमान मान्यतायें सनातनधर्मियों को यह कार्य करने न देंगी।

५) आर्यसमाज की ओर से राज्य राज्य में ऐसे आर्ष गुरुकुल खोले जायें जिनमें अस्पृश्य कही जानेवाली जातियों के बालक-बालिकाओं को आर्ष शिक्षापद्धति से गुरु-शिष्यपरम्परा के आधार पर संस्कृत तथा वेद-शास्त्रों की उच्च शिक्षा दी जाये। इन गुरुकुलों के छात्रों में एक प्रकार की तीव्र प्रतिस्पर्धा की भावना जागरित होगी। मुझे विश्वास है, ऐसे गुरुकुलों के छात्र सवर्णों के छात्रों से बहुत आगे निकल जायेंगे और सवर्णों से बहुत ऊंचे उठ जायेंगे।

६) हिन्दुओं के सभी सर्वमान्य पर्व हरिजनों की बस्तियों के निकट मनाये जायें। उनमें हिन्दुओं के सभी वर्गों के सभ्य-सभ्या अधिक से अधिक संख्या में भाग लें, ऐसी व्यवस्था की जाये। पर्वों में समता का वातावरण हो। प्रत्येक पर्व भव्यता और स्वच्छता के साथ मनाया जाये। ऐसे अवसरों पर अस्पृश्यों के कार्यक्रमों पर उन्हें पारितोषिक दिये जायें।

७) नगरनिगमों को प्रेरणा की जाये कि वे हरिजन-बस्तियों का नये सिरे से निर्माण करें। हर बस्ती में योजनानुसार घरों का पंक्तिबद्ध निर्माण हो। वहां के निवासियों में गलियों, सड़कों तथा घरों को साफ़-सुथरा रखने का संस्कार पैदा किया जाये। वृक्षों और हरियालियों का रोपण तथा सेचन स्वयं बस्तीवासियों से कराया जाये। बस्तियों के वातावरण को दर्शनीय, आकर्षक, जीवनप्रद तथा आह्लादक बनाया जाये। भीतर-बाहर और चारों तरफ़ के वातावरण का समाज के जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भव्य वातावरण निवासियों के जीवनों में भव्यता की प्रेरणा तथा स्थापना करता ही है।

८) अस्पृश्य बस्तियों में आर्यसमाजों की स्थापना की जाये और उनमें विशेष-शिक्षणप्राप्त, मिशनरी भावना के, विवाहित पुरोहित नियुक्त किये जायें। करोड़ों हिन्दु अस्पृश्यों तथा हरिजनों को आर्य बनाकर हिन्दु जाति को बहुत बलवान् बनाया जा सकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें आर्यसमाज के अतिरिक्त हिन्दुओं का अन्य कोई भी वर्ग प्रवेश करने का साहस न करेगा। आर्यसमाज की जो शक्ति व्यर्थ व्यासंगों में नष्ट होरही है, काश, वह इस साधनीय साध में जुट जाये तो हिन्दु जाति का बेड़ा पार होजाये और उसका काफ़िला प्रत्येक दिशा में तेज़ी के साथ आगे बढ़ जाये।

९) संसार में केवल भारत एक ऐसा देश है जहां शौचालयों, मूत्रालयों, सड़कों, नालियों तथा गलियों की सफ़ाई एक वर्ग-विशेष के ज़िम्मे है। गांधी जी की तीन बातों का मैं अपने उपदेशों में प्रायः उल्लेख किया करता हूं। गांधी जी कहा करते थे—यदि आप गन्दगी करना जानते हैं तो आपको सफ़ाई करना भी आना चाहिये, यदि आप खाना जानते हैं तो आपको खाना बनाना भी आना चाहिये, यदि आप पहनना जानते हैं तो आपको कपड़ा बुनना भी आना चाहिये। यहां इस लेख का सम्बन्ध गांधी जी के प्रथम वाक्य से है। सफ़ाई की उपर्युक्त वर्गीयता ने ही, मुख्यतः, हरिजनों को अस्पृश्य बना रखा है। जैसा कि अन्य सब देशों में

है, सफाई का यह कार्य वर्ग-विशेष के ज़िम्मे न रहकर समाज के सभी वर्गों द्वारा करणीय होना चाहिये। साथ ही यह बात भी है कि हरिजनों के जो परिवार शिक्षा प्राप्त करके सुसंस्कृत होते जाते हैं वे सफ़ाई के इस कार्य से मुक्त होकर सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थानों में नौकरियां करते हैं। वह समय भी निकट है जब ऐसे हरिजन-परिवार व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योगों को अपनायेंगे। परन्तु यह क्रम बहुत लम्बा होजायेगा। युग की आवश्यकता को देखते हुए, सफ़ाई के इस काम की ज़िम्मेदारी से हरिजनों को मुक्त करके, यह सभी वर्गों की संयुक्त ज़िम्मेदारी होनी चाहिये। सफ़ाई के इस कार्य को एक राष्ट्रीय, शिष्ट व्यवसाय का रूप दिया जाना चाहिये। जहां जहां नगर-पालिका तथा नगरनिगम हैं वहां वहां नगरों की सफ़ाई का कार्य उसी प्रकार ठेके पर कराया जाना चाहिये जिस प्रकार अन्य अनेक कार्य कराये जाते हैं। ठेकेदार सफ़ाई के वैज्ञानिक करण-उपकरण तयार करके इस कार्य के लिये वार्षिकवृद्धियुक्त वेतनों की दरें निर्धारित करेंगे। आकर्षक वेतन तथा वैज्ञानिक उपकरणों की उपलब्धि पर सवर्णों के व्यक्ति भी, स्वभावतः, सफ़ाई-विभाग को अपनायेंगे। दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि नगरपालिकायें तथा नगरनिगम स्वयं सफ़ाई-विभाग को स्वच्छता की दृष्टि से ऐसा वैज्ञानिक, तथा आर्थिक दृष्टि से ऐसा लाभप्रद बनायें कि सवर्ण इसे एक सम्मानित कार्य समझ-कर इस विभाग की सेवाओं में प्रविष्ट होने में ग्लानि अथवा असम्मान अनुभव न करें। सवर्णों द्वारा सफ़ाई की साधना को अपनाये जाने पर इस विभाग में सवर्ण तथा हरिजन जब एकजुष्ट होकर कार्य कर रहे होंगे तब हरिजनों के सवर्णों के साथ समस्तर होने में देर न लगेगी। तब न हरिजन 'हरिजन' होंगे, न सवर्ण 'सवर्ण' होंगे। तब दोनों एक-वर्ण होंगे; केवल हिन्दु वा आर्य होंगे।

१०) सारे देश में सरकारों द्वारा शिक्षा के अनिवार्यकरण में, प्रत्यक्षतः, अभी पर्याप्त समय लगेगा क्योंकि इस दिशा में आर्थिक परिस्थितियां

अभी अनुकूल नहीं है। किन्तु प्रत्येक प्रदेश तथा केन्द्रशासित क्षेत्र में हरिजन बालक-बालिकाओं के लिये मैट्रिक तक की शिक्षा आसानी से अनिवार्य तथा निःशुल्क की जा सकती है। *वास्तविक* हरिजनों की संख्या सम्पूर्ण भारत में अधिक नहीं है। *वास्तविक* शब्द का प्रयोग यहां मैंने इरादतन किया है। सरकारी लाभों की प्राप्ति के लिये बहुत से अ-हरिजन भी अपने आपको हरिजन घोषित करने लगे हैं।

११) स्वयं हरिजनों को इस बात का पूर्ण उद्योग करना चाहिये कि वे सफ़ाई के कार्य को स्वच्छ और सम्मानित बनायें। नगरपालिकाओं तथा नगरनिगमों के अतिरिक्त, भारत की केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों को चाहिये कि वे पाश्चात्य देशों की सफ़ाई-व्यवस्था के अध्ययनार्थ उच्च-शिक्षाप्राप्त, कुशल व्यक्तियों को उन देशों में भेजें। वापसी पर वे सरकारों को अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए ऐसे सुझाव प्रस्तुत करें जिनके क्रियान्वयन से जहां समूचे भारत की स्वच्छता सम्पूर्णता को प्राप्त हो वहां हरिजनों की वर्गहेयता का भी निर्मूलन हो।

१२) सम्पन्न सवर्ण परिवारों को घरेलू सेवकों का अभाव बहुत परेशान करता जा रहा है। ऐसे परिवारों को चाहिये कि वे घरेलू कामकाज के लिये हरिजन स्त्री-पुरुषों को नियुक्त करने लग जायें। अफ्रीका में निवास करनेवाले, सम्पन्न सवर्ण परिवारों में भोजन बनाने, कपड़े धोने, कमरों को स्वच्छ तथा सज्ज करने के लिये अफ्रीकन हब्शियों को सेवक के रूप में रखा जाता था, जो भारत के हरिजनों से किसी भी दृष्टि से बहतर नहीं होते थे। सवर्णों के परिवारों में काम करते करते वे सवर्णों के समस्तर होगयें थे। लौनों [दूब-वाटिकाओं] तथा उद्यानों को संजोने का कार्य भी हरिजनों को सिखाया जा सकता है। बाग़बानी सिखाकर नगरनिगमों तथा नगरपालिकाओं के पार्कों में उनकी सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है।

: १६ :

महापुरुषों की प्रतिष्ठा भी जाति के संगठन में एक अटूट लड़ी का काम

देती है। पर यहां महापुरुषों का विभाजन होरहा है। वह विभाजन हिन्दु जाति की छिन्न-भिन्नता में पर्याप्त कारणभूत है। पर्याप्त समय से यह बीमारी बढ़ती चली आरही है और हिन्दु जाति के तनू को क्षीण करती चली जारही है। प्रत्येक महापुरुष के नाम पर एक नये सम्प्रदाय की रचना हो जाती है, जो कालान्तर में हिन्दु जाति का अंग भंग कर देता है। इस प्रकार महापुरुषों की महापुरुषता इस जाति के लिये वर-दान के वजाय अभिशाप सिद्ध होरही है।

अंगभंगता का आरम्भ जैन मत के प्रवर्तक, महावीर स्वामी से हुआ। उनका उद्देश्य किसी नये पन्थ वा सम्प्रदाय का वीजारोपण न था। उस काल में व्यापी हुयी हिंसा के उन्मूलन के लिये उन्होंने कठोर साधना की और वेद के एक प्रसिद्ध योगांग, अहिंसा के आश्रय से उन्होंने मानवों की हिंसावृत्ति का निराकरण किया। अहिंसा का सिद्धान्त महावीर स्वामी की कोई नयी उपज वा उनका कोई नवीन आविष्कार न था। उन्होंने अपने मुख से न कभी वेद की निन्दा की, न नास्तिकता की शिक्षा दी। वे निर्मल वेद के तत्त्वज्ञान के एक प्रसारक तथा प्रचारक थे। अतः जनता उन्हें *ज्ञानेन्द्र* के नाम से पुकारने लगी। *ज्ञानेन्द्र* शब्द ही *जिनेन्द्र* बन गया। उनके निधन के बाद उनके प्रेमियों ने उनके नाम पर जैन सम्प्रदाय की रचना की। हिन्दु जाति का यह आदि विभाजन था।

ऐसी ही कहानी गौतम बुद्ध की है। बुद्ध स्वयं ब्रह्मवादी तथा वेद-निष्ठ था। इस सम्बन्ध में महात्मा धर्मदेव जी, विद्यामार्तण्ड-कृत, अगरेज़ी ग्रन्थ, *महात्मा बुद्ध* अवलोकनीय है। महात्मा जी ने स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि बुद्ध वैदिक महात्मा था और अपने को *आर्य* कहता था। जिनेन्द्र और बुद्ध, दोनों ही सबको *आर्य* तथा *आर्या* शब्द से सम्बोधन किया करते थे और स्वयं को भी *आर्य* कहते थे। *आर्य* परम आस्तिक तथा वेदानुयायी को कहते हैं। फिर यह कैसे माना जाये कि जिनेन्द्र और बुद्ध नास्तिक वा अवैदिक थे? जैसा जिनेन्द्र के साथ हुआ वैसा ही बुद्ध के साथ हुआ। बुद्ध के नाम पर

बुद्ध मत बना लिया गया और हिन्दु जाति का फिर विभाजन हुआ। यह विभाजन इतना घातक हुआ कि एक बार तो इसने हिन्दु जाति के अस्तित्व को नामशेष कर दिया। शंकराचार्य ने जिस मत का प्रादुर्भाव किया उसने बुद्ध मत को मिटाने के प्रयास में जगत् को मिथ्या बनाकर जातीयता की दृष्टि से इस जाति को नितान्त सत्त्वहीन बना दिया। शंकराचार्य के बाद अनेक आचार्यों ने अनेक सम्प्रदायों की स्थापना की और जातीय विभाजन की वह शृंखला लम्बी होती चली गयी।

इस्लाम और ईसाइयत विदेशी सम्प्रदाय हैं। पर भारत में वे भी पनपे हिन्दुतनू से ही। यहां जितने भी मुसलमान और ईसाई हैं, सब रक्ततः हिन्दु हैं। दुर्विपाक यह है कि दोनों ही सम्प्रदाय हिन्दुओं को मिटाने पर तुले हुये हैं। इससे भी बढ़कर दुर्विपाक है सिखों का हिन्दुओं के साथ दुराव। गुरु नानक, जो सिखों के आदि गुरु कहलाते हैं, हिन्दु थे और उनके ही शिष्य *सिख* कहलाये। *शिष्य* का ही रूपान्तर है *सिख* शब्द। सर्वतः हिन्दु होते हुये भी सिख अब अपने आपको अहिन्दु कहते हैं। हिन्दुरक्त, मुसल्मानों ने भारत का विभाजन कराकर पाकिस्तान बनाया। ईसाइयों ने दक्षिण भारत में प्रत्येक प्रदेश में ईसाई-छावनियां बनाली हैं। गोवा और नागालैण्ड क्रिश्चियन प्रदेश बने हुये हैं। सिखों ने पजाब को सिखिस्थान बना ही लिया है। असम प्रदेश भी ईसाइयत तथा इस्लाम का शिकारगाह बन रहा है, जहां हिन्दुओं का अस्तित्व और भविष्य खतरे में है।

राधास्वामी, ब्रह्मकुमारी, निरंकारी, आनन्दमार्ग, व्यासमार्ग, आदि असंख्य सम्प्रदाय हिन्दुतनू में से कट-कटकर विलग हो गये हैं। अनेक नये गुरु और अनेक नये सम्प्रदाय आये-दिन हिन्दुओं से निकलकर हिन्दुसमाज से विलग होते जारहे हैं। विलग हो-होकर वे हिन्दु जाति के विरोधी बनते जाते हैं। हर सम्प्रदाय का अपना अपना पृथक् महा-पुरुष, गुरु वा भगवान् है। हर सम्प्रदाय का अपना अपना पृथक् ग्रन्थ है। महापुरुषों की सर्वमान्यता समाप्तप्राय है। परिवार-नियोजन और

शासन की नीतियां भी हिन्दु-विरोधी तथा हिन्दु-अस्तित्वविनाशक हैं। निदान सद्यः चिकित्सा की अपेक्षा रखता है।

: १७ :

सनातनधर्म के बहुमान्य संन्यासी, श्री स्वामी गुरुचरणदास जी ने ९ नवम्बर, १९६७ को रामलीला मैदान, नयी दिल्ली में महर्षि दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये बड़े दर्द-भरे शब्दों में कहा था, 'दिल्ली में परमात्मा के नौ [९] अवतार हैं। एक माता जी मत चला है जिसके अनुयायी शराब पी-पीकर माता की आरती करते हैं। अन्य अनेक नये अवतार और सम्प्रदाय हिन्दु जाति की प्रतिष्ठा को नष्ट कररहे हैं।' आर्यसमाज ही इस अभिशाप से हिन्दु जाति को मुक्त कर सकेगा, ऐसी श्री स्वामी जी की ध्वनि थी। स्वामी जी ने आगे चलकर कहा था, 'अकेला आर्यसमाज वा अकेला सनातन धर्म हिन्दु जाति को रोगमुक्त करने में सफल न होगा। दोनों को मिलकर कार्य करना होगा।' कौन है जो श्री स्वामी जी से इस विषय में असहमत होने की मूर्खता करेगा?

हिन्दु जाति की रक्षा के अनेक कार्य हैं जिनका क्रियान्वयन सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के सम्मिलित रूप से और समान प्लेटफॉर्म से बिना किसी आपत्ति के हो सकता है। स्वामी जी के इस कथन से मैं सर्वथा सहमत हूं कि सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के प्लेटफ़ॉर्मों [मंचों] की विलगता समाप्त होनी चाहिये। शास्त्रार्थ आर्यसमाज के प्रचारकार्य का एक प्रमुख अंग है। वर्तमान युग की पुकार है कि शास्त्रार्थों का प्रयोग अब हिन्दु-भिन्न वर्गों के साथ ही हो। सनातनधर्म के विद्वान् प्रायः आर्यसमाज की वेदि से बोलते हैं और वे ध्यान रखते हैं कि वे कोई ऐसी बात न कहें जिनसे आर्यसमाज की मान्यताओं से विरोध होता हो। वैसे ही सनातनधर्म-मन्दिरों में आर्यसमाज के सभ्य-सभ्या बोलते हैं और वे इस बात की सावधानी बरतते हैं कि वहां वेद का सन्देश देते हुये कटाक्षपूर्ण तथा हृदयहीन कोई वचन न बोले जायें। दोनों की मान्यताओं में कपितय विषयों में विचारभिन्नता है, जिसका

समाधान स्नेहपूर्ण, [illegible] ढंग से होता रह सकता है। विदेशी सम्प्रदायों के साथ वेशक आर्यसमाज को घनघोरता के साथ पं. रामचन्द्र देहलवी की सी शैली से शास्त्रार्थ करने ही चाहियें। हिन्दुओं में जितने सम्प्रदाय हैं उन सभी को, सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के संयुक्त प्रयास से, एकत्व के सूत्र में पिरोने का लक्ष्य दोनों के ध्यान में जमा रहना है। भेद बहुत थोड़े हैं और समानतायें सुपर्याप्त से भी कहीं अधिक हैं।

सनातनधर्म और आर्यसमाज, दोनों एक ही हैं। दोनों के पूर्वज समान हैं। दोनों का इतिहास अभिन्न है। परम्परा, संस्कृति तथा सभ्यता के स्रोत समान हैं। जाति समान [आर्य जाति] है। राम आर्य थे। कृष्ण आर्य थे। हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के सभी निवासी, इतिहास और रक्त के नाते से, आर्य हैं। ख़ान अब्दुल गफ्फ़ार खां डंके की चोट कह रहे हैं कि पखतून तथा अफ़ग़ान, सभी आर्य जाति के वंशों में से हैं। फिर भी सम्प्रदाय-परिवर्तन के कारण अन्य कोई अपने को आर्य न मानें तो न मानें, भारत के सनातनधर्मी तो अपने को आर्य मानते हैं और मानेंगे। आर्यसमाज का तो वैदिक लक्ष्य ही है **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**—विश्व को आर्य बनाना।

हिन्दु जाति के इन दोनों वर्गों को अभिन्नता के साथ संयुक्त करके ही भारत का आर्यकरण सम्भव होगा। दोनों की अभिन्न साधना से ही भारत में धर्म-राज्य की प्रस्थापना और आर्य राष्ट्रीयता की प्रसाधना की जा सकेगी। सनातनधर्म के सभी उदार विद्वान् तथा नेता मुक्त कण्ठ से आर्यसमाज की कर्मक्षमता का लोहा मानते हैं। उनके धर्मस्थानों की रक्षा तक आर्यसमाज ने की है। कर्मक्षमता आर्यसमाज की अमित है तो सनातनधर्म के साधन अनन्त हैं। साधनों के विना अनेक साधनीय साधनायें असिद्ध पड़ी हुई हैं। दोनों की विलगता को सलगता में किस प्रकार परिणत किया जाये, इस पर प्रकाश डाला जाना अनिवार्यतः आवश्यक है।

आर्यसमाज के उद्भट विद्वान्, पं. भगवद्दत्त जी, रिसर्च स्कॉलर ने पुराणों के आश्रय से भारत के इतिहास की श्रेणियां लिखी हैं। पुराणों को आधार मानकर उन्होंने भारत के इतिहास की लुप्त हुई कड़ियों को जोड़ा है। पुराणों का मैंने अभी तक अध्ययन तो नहीं किया है, किन्तु सरसरी निगाह से उनका पारायण किया है। उससे मेरा पं. भगवद्दत्त जी की तरह ऐसा मत बना है कि पुराणों से भारत के इतिहास की लुप्त शृङ्खलाओं की खोज की जा सकती है और उनके कथानकों का, सबका नहीं तो बहुतों का, बुद्धिसंगत, ऐतिहासिक रूप निखारा जा सकता है। साथ ही उनसे धार्मिक मान्यताओं के अन्तर्निहित आशयों की वैदिक व्याख्या भी की जा सकती है। स्वयं मैंने वाल्मीकीय रामायण के आधार पर *रामचरित* नामक जिस पुस्तक की रचना की है उसे सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के क्षेत्रों में समान श्रद्धा से इसी लिये अपनाया गया है कि उसमें मैंने किसी वितण्डावाद को खड़ा न करके रामायण-पुराण के ऐतिहासिक रूप को श्रद्धापूर्वक निखारा है।

इसी प्रकार, मेरा विचार है कि सभी पुराणग्रन्थों का ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्वरूप निखारकर उन्हें सम्पूर्ण हिन्दु—आर्य-समाज के लिये सर्वथा सिद्धान्तानुकूल, मान्य तथा निरापद बनाया जा सकता है। ऐसा होने पर सनातनधर्म तथा आर्यसमाज के एकीकरण में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

सार्वदेशिक-आर्यप्रतिनिधिसभा के विद्वान् उपमन्त्री, श्री पं. शिवचन्द्र जी ने हाल में ही एक बातचीत में मुझे बताया कि वेद ही सनातनधर्म है, कि वेदानुयायी ही सनातनधर्मी हैं, और कि जिनको हम सनातनधर्मी कहते हैं वे सनातनधर्मी नहीं, पौराणिक हैं। उनके इस कथन से मुझे एक नयी दिशा की झलक मिली। वेदों की वैदिक *व्याख्या तथा* वेदों का वैदिक अर्थ सनातनधर्म और आर्यसमाज को

एक रूप कर सकता है। मद्रचित वेदव्याख्या-ग्रन्थों के जो पुष्प प्रकाशित हो रहे हैं उन्हें सनातनधर्म तथा आर्यसमाज, दोनों के विद्वानों तथा वेदानुशीलनकर्ताओं ने समान रूप से सराहा और अपनाया है। उनमें से प्रथम पुष्प का जो अंगरेज़ी अनुवाद हुआ है उसे पाश्चात्य विद्वानों ने अतिशय अनुकूलता के साथ अंगीकार किया है। *निस्संदेह, वेदों का वैदिक व्याख्यासहित वैदिक वेदार्थ हिन्दुमात्र को ही नहीं, मनुष्यमात्र को एकत्व के सूत्र में पिरो सकता है।* इसी लिये तो महर्षि दयानन्द ने वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना *परम धर्म* ठहराया था।

इस लेखमाला के सत्रहवें लेख में मैंने संकेत किया था कि आर्यावर्त के महापुरुषों की सर्वमान्यता किन कारणों से समाप्त हुयी है। उसी लेख में मैंने यह भी संकेत किया था कि परिवार-नियोजन और शासन की नीतियां भी हिन्दु-विरोधी तथा हिन्दु-अस्तित्वविनाशक हैं। इस सबकी चिकित्सा किस प्रकार की जाये, यह विचारणीय है।

जिस प्रकार अलंकारों, अलौकिकताओं तथा चमत्कारों के झाड़-झंकाड़ से शुद्ध, ऐतिहासिक तथ्यों को निकालकर मैंने *रामचरित* की रचना की है उसी प्रकार आर्यावर्त के समस्त महापुरुषों तथा मही महिलाओं के चरितों के प्रकाशन की प्रत्यक्षतः आवश्यकता है। हमारे महापुरुषों की शृंखला सृष्टि के आदि से आरम्भ होती है। ऋषियों की शृंखला भी ब्रह्मा से लेकर दयानन्द तक बहुत लम्बी है। सभी में हमारी समान निष्ठा तथा आस्था हो, एतदर्थ हमें उनकी जीवनियों का ऐतिहासिक विवरण प्रकाशित करना है। जिन्हें आज अछूत और अन्त्यज अथवा अन्त्यक् कहा जारहा है उनमें भी भक्तों और सन्तों के रूप में बड़े बड़े महापुरुष और मही महिलायें हुई हैं। उनके चरितों को पढ़-सुनकर हिन्दु जाति की अपने महापुरुषों और मही महिलाओं में जो आस्था प्रस्थापित होगी उससे हिन्दु जाति के सभी वर्गों को एकत्व में सिया जा सकेगा। अपने महापुरुषों के विषय में हमारी सन्तति की अनभिज्ञता, अवमान्यता तथा लापरवाही ने हिन्दु जाति के संगठन को

बहुत विगाड़ा किया है। [illegible] और [illegible], उक्त लेखकों को शीघ्रातिशीघ्र इस खाई को पाटने को संसाधना करनी चाहिये।

: १९ :

शासन की वोट-बटोर नीति ने हिन्दु विद्यार्थियों के मानस में से पूर्वजों की महानताओं को ओझल ही नहीं किया है, कोर्स की किताबों में उन्हें बहुत हलकेपन से प्रस्तुत किया है, जब कि अहिन्दु साधारण व्यक्तियों को महापुरुषों के रूप में पेश किया गया है। केन्द्र और प्रदेशों के शासकों से यह आशा करना कि वे पाठ्य पुस्तकों में कभी भी हिन्दुओं के पूर्वजों का ऐतिहासिक दृष्टि से सही रूप चित्रित करेंगे, दुराशामात्र है। इस दिशा में अशेषतः सम्पूर्ण कार्य हिन्दु विद्वानों को ही करना होगा। इस साध की सिद्धि के लिये आदि से अद्य तक के इतिहास की नये सिरे से रचना करनी होगी। मैं चाहता हूं कि इस कार्य के लिये कोई हिन्दु-परिषद् हरकत में आये। अन्यथा वेद-संस्थान को तो यह कार्य करना ही होगा। यदि संस्थान को ही यह कार्य करना पड़ा तो साधकों और साधनों की न्यूनता के कारण इसमें बहुत विलम्ब होजायेगा।

सरकारों द्वारा चालित परिवार-नियोजन जिस रीति-नीति से चल रहा है उससे जहां हिन्दुओं को हिन्दुस्थान में अल्पसंख्यक बना-कर रख दिया जायेगा वहां वह जातीय दृष्टि से हिन्दुओं के लिये और भौमिक दृष्टि से देश के लिये बहुत खतरनाक है। विघातक शस्त्रास्त्रों के आविष्कारों के बावजूद भी जनशक्ति का महत्त्व है। चीन देश इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसकी जनशक्ति के सामने रूस और भारत सतत आशंकित रहते हैं। हजारों मील दूर स्थित होते हुये भी अमेरिका चीन की जनशक्ति से थर्रा रहा है और चीन के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने के लिये अन्दर-खाने उपाय कररहा है। अपनी भौगो-लिक और पड़ौसीय समस्याओं से सफलता के साथ निबटने के लिये हिन्दुओं की अपनी आबादी चीन के मुक़ाबिले की होना नितान्त

आवश्यक है। चीन की आबादी इस समय सत्तर करोड़ है और वह अपनी जनसंख्या इससे कम नहीं करना चाहता है।

परिवार-नियोजन के नाम पर एक और बड़ी भयंकर विनष्टि का सूत्रपात होरहा है। सुशिक्षित, स्वस्थ और सुसम्पन्न दम्पती, जो दस-बारह बच्चों का पालन, पोषण और सुशिक्षण कर सकते हैं 'केवल दो या तीन बच्चे और बस' के नारे के शिकार होरहे हैं। उधर मध्य श्रेणी तथा दरिद्र श्रेणी के दम्पती, जो दो-चार बच्चों से अधिक का पालन, पोषण तथा शिक्षण करने में असमर्थ हैं, दस-दस, बारह-बारह बच्चों के माता-पिता बनकर राष्ट्र के लिये निपट कंकालों की संख्या-वृद्धि कर रहे हैं। हिन्दु जाति के हित में यही होगा कि साधारण तबकों में कोई भी दम्पती चार बच्चों से अधिक के माता-पिता न बनें और सम्पन्न श्रेणी के दम्पती दस-दस बलिष्ठ और बुद्धिमान् पुत्र-पुत्रियों के माता-पिता बनें।

जनगणनाओं में हिन्दुओं को बहुत सावधानी वर्तने की आवश्यकता है। तीन जनगणनाओं में मैंने सुपरवाइज़र का काम किया था। उनका मुझे बहुत कटु अनुभव है। ईसाई और मुस्लिम गणक हिन्दु-परिवारों की जनसंख्या जान-बूझकर कम लिखते थे और अपने अपने सम्प्रदाय के परिवारों की जनसंख्या कहीं अधिक दिखाते थे। बार बार पुनर्गणना करके मैं संख्याओं को ठीक कराता था। पाकिस्तान के निर्माण में ग़लत जनगणना ने देश का जो विनाश किया उसके परिणामस्वरूप भावी जनगणनाओं के अवसर पर हिन्दुओं की आंखें खुली रहनी चाहियें।

विभाजन के समय जनगणना के आंकड़ों के अनुसार पंजाब में मुस्लिम-प्रतिशतक इक्यावन और हिन्दु-प्रतिशतक उनंचास था। लगभग ऐसी ही स्थिति बंगाल में थी। मुस्लिम-बहुल होने पर भी इन दोनों प्रान्तों में प्रतिशतक वास्तव में हिन्दुओं का मुस्लिमों से अधिक ही था। वह सब ग़लत जनगणना की ही करामात थी। १९६९ में केरल राज्य में दो ज़िलों को काट-छांटकर एक छोटा-सा पाकिस्तान बनाया जा चुका

है। यदि जनगणनाओं में सतर्कता न वर्ती गयी तो पुनः अनिष्ट के द्वार खुल सकते हैं। हिन्दु-संस्थाओं को इस विषय में अचूक व्यवस्थायें करनी चाहियें। स्वभाव से असाम्प्रदायिक होते हुये भी हिन्दुओं को साम्प्रदायिकता से अपनी रक्षा करनी है।

:२०:

इस्लाम और ईसाईयत, ये दो विदेशी सम्प्रदाय ही राष्ट्रगठन और हिन्दु-संगठन को इतना क्षतिग्रस्त नहीं कर रहे हैं जितना स्वयं हिन्दुओं के सम्प्रदाय कर रहे हैं। ईसाइयों के छहत्तर [७६] सम्प्रदाय हैं। किन्तु तीन सूत्र ऐसे हैं जो उन्हें परस्पर सम्बद्ध रखते हैं—क्राइस्ट, क्रॉस और बाइबिल। सबका एक देवता क्राइस्ट है। सबका एक चिह्न क्रॉस है। सबकी एक किताब बाइबिल है। इसी प्रकार, मुसलमानों के भी तीन सूत्र हैं जिन्होंने इस्लाम के छत्तीस फ़िर्क़ों को एकता के सूत्र में ग्रथित किया हुआ है—मोहम्मद, क़ुरान और काबा। सभी फ़िर्क़ों का पैग़म्बर मोहम्मद है। सभी की एक किताब क़ुरान है। काबा सभी का तीर्थस्थान है।

हिन्दुओं में इतने सम्प्रदाय हैं कि उनकी निश्चित गणना कर सकना आसान काम नहीं है। निश्चित गणना तो तब हो जब सम्प्रदायों की रचना पूर्ण हो चुकी हो। यहां तो नित्य नये नये सम्प्रदायों की रचना निरन्तर, निर्बाध चलती रहती है। लुत्फ़ यह है कि प्रत्येक हिन्दु-सम्प्रदाय का अपना अपना पृथक् खुदा है, पृथक् देवता है, पृथक् गुरु है, पृथक् मन्दिर है, पृथक् ग्रन्थ है। हिन्दुओं में ऐसे ऐसे बीभत्स सम्प्रदाय भी हैं जिन्हें हिन्दु जाति का कोढ़, कलंक और अभिशाप कहा जा सकता है और जिन पर लज्जा को भी लज्जा आती है। दुर्भाग्य यह है कि इन सम्प्रदायों के अनुयायी परस्पर एक दूसरे के कार्यक्रमों तक में सम्मिलित नहीं होते हैं, एक दूसरे की छाया तक से बिदकते हैं।

इस रोग का इलाज एक विकट समस्या है। मुझे इसका एक ही उपाय सूझता है और वह यह कि सनातनधर्म-सभा हिन्दुओं के सब सम्प्रदायों की मान्यता अथवा अमान्यता का निर्णय घोषित करके सनातनधर्मी जनता

को अग्राह्य सम्प्रदायों में सम्मिलित होने से रोके । जिन हिन्दु सम्प्रदायों में मांस, मदिरा और मैथुन की छूट है, जो वेदों, शास्त्रों और पूर्वजों की निन्दा करते हैं उन सम्प्रदायों के विरुद्ध शास्त्रीय आधार पर तुमुल प्रचार करे; प्रत्येक सम्प्रदाय में शुद्ध विचार, शुद्ध आहार और शुद्ध व्यवहार की प्रतिष्ठा करे । सनातनधर्म को जीता-जागता, एक आचारप्रतिष्ठ रूप दिया जाये और माहात्म्य-वृत्ति का निवारण किया जाये । महात्म्य-वृत्ति से हिन्दु जाति का जितना वैचारिक और आचारिक सर्वनाश हुआ है उतना और किसी बात से नहीं । इस वृत्ति ने शुद्ध, सनातन वैदिक धर्म को कूड़ा-कचरा बनाकर रख दिया है । हिन्दु जाति के अस्तित्व और गौरव के नाम पर मैं सनातनधर्म के संन्यासियों, मंडलेश्वरों, विद्वानों और प्रचारकों से अपील करता हूं कि वे हिन्दु जाति के संगठन को अजेय बनाने के लिये सुधार और संशोधन का ऐसा तीव्र आन्दोलन करें कि हिन्दुओं में से अवैदिक तथा अशास्त्रीय, समस्त सम्प्रदाय लुप्त होजायें और सम्पूर्ण हिन्दु जाति राम की प्रजा बन जाये । यह कार्य सनातनधर्म को स्वयं करना है । एक शोध-पत्रिका के अनुसार सनातनधर्म में आठ सौ अनैतिक सम्प्रदाय हैं जो हिन्दु जनता को भ्रान्त करके उन्हें लूट रहे हैं और उनके चरित्र को भ्रष्ट कर रहे हैं ।

देवताओं की संख्यावृद्धि ने भी हिन्दुओं के विगठन को पर्याप्त उभारा है । ओम्, वेद और मातृभूमि—ये तीन देवता ही श्रेयस्कर हैं । साथ ही धर्म के शाश्वत मूल्यों की रक्षा के लिये सनातनधर्म के विश्वासों का भी विश्लेषण किया जाये । अन्ध विश्वासों को पृथक् करके धर्मप्रधान, सत्य विश्वासों की ही हिन्दुप्रजा के मानस में स्थापना की जाये । भ्रम-भ्रान्तियां तथा अन्ध विश्वास वे घुन हैं जिन्होंने हिन्दु जाति के सत्त्व को सर्वथा नष्ट कर दिया है, उसे नितान्त नपुंसक बना दिया है । इसी लिये यह जाति आसानी से विधर्मियों के चंगुल में फंसकर उन वर्गों का अंग बन जाती है जो हिन्दु और हिन्दुत्व का नामो-निशान मिटाने पर तुले

रहते हैं।

: २१ :

हिन्दु, हिन्दी और हिन्दुस्थान—यह त्रित ही हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा मूल सूत्र है। यह सूत्र न साम्प्रदायिक नारा है, न मूर्खों का स्वप्न है। मेरी दृष्टि में यह एक साधनीय साध भी है और साध्य भी है। पाकिस्तान का इस्लामी राज्य होना साम्प्रदायिकता नहीं है। ब्रिटेन अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया विधानसम्मत, क्रिश्चियन राज्य हैं। फिर भी उन्हें कोई साम्प्रदायिक राज्य नहीं कहता है। यदि भारत को हिन्दु राज्य घोषित किया जाये तो उसमें किसी को साम्प्रदायिकता की गन्ध क्यों आती है? यदि हिन्दुस्थान हिन्दु राज्य नहीं है, यदि हिन्दुस्थान के निवासी हिन्दु राष्ट्र के तनू में समवेत नहीं हैं, यदि हिन्दी हिन्दुस्थान की सम्पर्ककारक और सांस्कृतिक भाषा नहीं है तो फिर अपने ही देश में हिन्दुओं का कोई अस्तित्व और वर्चस्व न रह पायेगा।

तर्क, विवाद और समाधान निरर्थक नहीं तो दुर्बल और नपुंसक अवश्य हैं। पृथिवी की प्रथम प्रभात से लेकर आज तक चमत्कार शक्ति, संगठन और संकल्प का ही रहा है। मुट्ठी-भर अंगरेजों ने इस त्रित के आश्रय से ही समस्त भूमण्डल पर संसार के सबसे बड़े साम्राज्य की स्थापना की थी और बड़ी शान से उसका संचालन किया था। पाकिस्तान और पंजाबी सूबे का निर्माण इसी त्रित का चमत्कार है। हिन्दु जाति के नेता अपने संकल्प को जगायें, अदम्यता के साथ हिन्दु जाति का आन्तरिक संशोधन करते हुए हिन्दु-संगठन को अडिग और अजेय बनायें। सम्पूर्ण हिन्दु जाति के संकल्प को संकल्पित करें। संकल्प और संगठन ही इस जाति को सर्वशक्त बना सकेंगे। और जिस दिन यह जाति सर्वशक्त और सम्पन्न बन जायेगी उसी दिन इसकी सारी आपदायें पलायन करेंगी और इसके सर्वनाश पर तुले हुए सभी वर्ग उसी दिन इसके हितैषी मित्र बन जायेंगे।

हिन्दु जाति के सभी वर्गों के प्रचारकों, कथाकारों, नेताओं तथा

संन्यासियों के लिये पेशेवरी से सर्वथा मुक्त होकर मिशनरी भावना से कार्य करने का यह युगधर्म है। इस दिशा में सक्रिय पग उठाने में आर्यसमाज को ही पहल करनी होगी। आर्यसमाज जब एंजिन बनकर साधनापथ पर दौड़ेगा तो ही हिन्दु-वर्गों के डिब्बे भी दौड़ेंगे। इस जाति की रक्षा की ज्वाला को यदि कोई प्रज्वलित कर सकेगा तो मेरी दृष्टि में वह केवल आर्यसमाज है। हिन्दु-महासभा नामशेषमात्र है। सनातन-धर्म वह अजगर है जिसे हिलाना सरल कार्य नहीं है। आर्यसमाज ही है जिसे चेताया और जगाया जा सकता है। सार्वदेशिक-आर्यप्रतिनिधि-सभा इस दिशा में भगीरथ प्रयास कर रही है। पर इस विशालतम कार्य के लिये उसके साधन न्यूनातिन्यून हैं। आर्यसमाज कार्यकर्ताओं की अक्षय सेना खड़ी कर सकता है, बशर्ते कि सनातनधर्म उसे साधनों से आपूर-भरपूर भरदे। सनातनधर्म के साधन और आर्यसमाज के साधक मिलकर इस साध को बहुत तीव्र गति से सिद्ध कर सकते हैं। दोनों ही मेरी पुकार को सुनें और एकतन होकर कार्य में जुटें। अपनी दोनों भुजाएं उठाकर मैं दोनों का आह्वान करता हूं।

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत।

उठो, जागो और लक्ष्यों की सिद्धि करके ही दम लो।

●

पाठक से

वेदसंस्थान इस पुस्तक की विषयवस्तु, लेखनशैली और आकार-प्रकार के बारे में आपके विचारों के लिये आभारी होगा। अन्य कोई सुझाव आप देना चाहें तो उन्हें जानकर भी हमें प्रसन्नता होगी। हमारा पता है : *बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर, भारत*

वेद के अध्ययन और मानव-संस्कृति के ज्ञान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ माध्यम

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

- देव के दिव्य काव्य, वेद के अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ साधन,
- वेदमंत्रों की 'विदेह'-कृत, मौलिक, जीवनप्रद, याथातथ्य व्याख्या,
- अत्यन्त ठोस, सुपच, पौष्टिक, प्रेरणाप्रद सामग्री से भरपूर,
- अथर्ववेद का अध्ययन, ऋग्वेद का अध्ययन, घर-संसार, शब्दचिंतन, शिक्षाजगत्, स्वास्थ्य और सौंदर्य, आदि स्थायी स्तम्भों से समलंकृत,
- विद्वानों के उच्च कोटि के, पथप्रदर्शक लेखों से समन्वित,
- प्रतिवर्ष किसी वैदिक विषय पर स्थायी मूल्य का विशेषाङ्क ।

एक-एक शब्द पठनीय, मननीय, आचरणीय ।।
एक-एक तरंग मानव को ऊंचा उठानेवाली ।।
एक-एक प्रेरणा जीवन को आगे ले जाने वाली ।।
एक-एक चेतावनी मानव के मानस को चेतानेवाली ।।

वार्षिक मूल्य छः रुपये [विदेशों में बारह रुपये]

स्वयं ग्राहक बनिये और प्रिय जनों को बनाइये।

वेद-संस्थान

बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर (भारत)

वेद-संस्थान के प्रकाशन

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'-रचित

- **कर्मकाण्ड**

गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२० पैसे
महामृत्युञ्जय-मन्त्र का अनुष्ठान	०.२० ,,
विजय-याग	०.५० ,,
वैदिक सत्संग	०.४० ,,
सत्यनारायण की कथा	०.४० ,,
स्वस्ति-याग	०.८० ,,

- **कर्मकाण्ड-व्याख्या**

जीवन-पाथेय	०.५० ,,
यज्ञोपवीत-रहस्य	०.२५ ,,
सन्ध्या-योग	०.४० ,,

- **कविता**

दयानन्द-चरितामृत	रु १.००
योग-तरङ्ग	०.२० पैसे
'विदेह'-गीतावली	०.६० ,,

- **जीवनी**

जीवन-ज्योतियां	०.४० पैसे
रामचरित	रु १.००

- **नैतिकोत्थान**

उत्तम स्वभाव	०.२० पैसे
गृहस्थाश्रम	०.५० ,,
चरित्र-निर्माण	०.३० ,,
भारत के अध्यापकों से	०.३० ,,
भारत के विद्यार्थियों से	०.३० ,,

अ

मानव-धर्म ०.२५ पैसे

वैदिक बालशिक्षा (तीन भाग) रु २.१०

प्रथम भाग : ०.७० पैसे
द्वितीय ,, : ०.७० ,,
तृतीय ,, : ०.७० ,,

वैदिक स्त्री-शिक्षा ०.३० पैसे

● योग

गीतायोग	रु ८.००
परम योग	०.८० पैसे
योगालोक	रु २.५०
[पुस्तकालय-संस्करण : रु ५.००]	
वैदिक-योगपद्धति	०.४० पैसे
साधना	रु १.२५

● वेदव्याख्या

आनन्द-सुधा (यजुर्वेद अ० ३६ की व्याख्या)	०.४० पैसे
गायत्री	रु १.००
(द) वैदिक प्रेअर्स [The Vedic Prayers]	रु २.००
वेदव्याख्या-ग्रन्थ (भाग ११, खंड १)	रु २०.००
वेदव्याख्या-ग्रन्थ (प्रथम पुष्प)	रु ३.००
,, ,, (द्वितीय ,,)	,, १.८०
,, ,, (तृतीय ,,)	,, २.२५
,, ,, (चतुर्थ ,,)	,, १.२५
,, ,, (पञ्चम ,,)	,, २.००
,, ,, (षष्ठ ,,)	,, २.००
,, ,, (सप्तम ,,)	,, १.५०
,, ,, (अष्टम ,,)	,, १.५०
,, ,, (नवम ,,)	,, १.००
,, ,, (दशम ,,)	,, १.००

(द) एक्स्पोज़ीशन ऑव् द वेदज़्
[The Exposition of the Vedas] रु ४.००

वेदव्याख्या-ग्रन्थ (एकादश पुष्प) रु १.२५
" " (द्वादश पुष्प) रु २.००
" " (त्रयोदश पुष्प) रु १.६०
" " (चतुर्दश पुष्प) रु १.३५

शिव-सङ्कल्प ०.४० पैसे

सामवेद का अध्ययन रु १.२५

• **संस्कृत-भाषा**

संस्कृत-शिक्षा (दो भाग) ०.६० पैसे

प्रथम भाग : ०.२० पैसे
द्वितीय भाग : ०.४० "

संस्कृत-स्वयंशिक्षक (दो पुष्प) रु १.४०

प्रथम पुष्प : ०.७० पैसे
द्वितीय पुष्प : ०.७० "

• **सामयिक**

हिन्दु जाति के अस्तित्व की रक्षा रु १.००

• **स्वास्थ्य**

स्वास्थ्य और सौन्दर्य रु ०.७० पैसे

हैल्थ एण्ड ब्यूटी [Health and Beauty] रु १.००

*

• **पत्रिका**

'सविता' (मासिक) की पुरानी उपलब्ध जिल्दें :

वर्ष ४, ५ रु ३.५०
" ६-१०, १६-१९ रु ३.२५
" २०-२५ रु ५.५०

'सविता' का 'सुपर्णाङ्क' ['सुपर्ण-परिशिष्टांक' सहित] रु ३.००
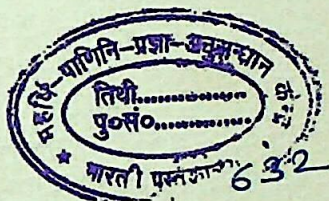
जन्म : १५ नव

(अजमेर, दिल्ली

मर्मज्ञ व्याख्याता,

सन्त। वाणी में अ

की क्षमता। व्य

लेता है आत्मीयत

प्रतिक्षण साधनाम

जीवन। लेखन की शैली ललित, प्रस

से रहित।

'विदेह' का जीवन वेद और योग को समर्पित है। उनका दृष्टि-कोण देश की सीमाओं से अतीत, सार्वभौम और अखिल-मानवतापरक है। उनके अपने शब्दों में उनके परिवार में ३ अरब ६० करोड़ मनुष्य हैं। उन्होंने लिखा है, 'विश्वसदन का मैं सदस्य हूं, दुनिया माने चाहे न माने। विश्वसदन में आग लगी है, मैं आया हूं उसे बुझाने।' उनकी वाणी और लेखन का प्रमुख स्वर मनुष्य का नैतिकोत्थान है।

प्रस्तुत पुस्तक 'विदेह' के उदार, सार्वदेशिक चिन्तन का एक निदर्शन है। उनके अनुसार भारत का प्रत्येक नागरिक, चाहे उसका धर्म, मजहब वा संप्रदाय कोई भी हो, देश के नाते से हिन्दु है। 'विदेह' ने इस शब्द को जातिवाची माना है, सांप्रदायिक नहीं। युग की आवश्यकता न केवल यह है कि जो स्वयं को 'हिन्दु कहते हैं वे सच्चे राष्ट्रभक्त बनें, वरन् यह भी है कि जो भ्रांतिवश, अपने संप्रदाय वा मजहब को दृष्टि में रखते हुए, स्वयं को हिन्दु नहीं मानते वे भी, देश और उसकी संस्कृति के नाते से, स्वयं को हिन्दु मानें। और फिर सब मिलकर देशनिष्ठामूलक मानवता के स्वर से भूतल में पुनः स्वर्णयुग उतारने में जुट जायें।